thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 19 अक्तूबर 2014 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 19 अक्तूबर 2014 से 25 अक्तूबर 2014

का.कृ. 11 ● वि० सं०–2071 ● वर्ष 79, अंक 130, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 191 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,115 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. द्वारका में हवन यज्ञ एवं अस्थिशक्तिघनत्व परीक्षण शिविर

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सेक्टर–6 द्वारका नई दिल्ली में एक बृहद यज्ञ का आयोजन किया गया जिसका उद्देश्य विश्व कलयाण की भावना थी। विश्व धरा पर रहने वाले समस्त प्राणीमात्र के लिये विशेष सामग्री द्वारा विद्यालय के प्रांगण में छात्रों/शिक्षकों के द्वारा हवन यज्ञ में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। कार्यक्रम में विशेष रूप से पधारे सम्मानित अभिभावक वृन्द ने भी यज्ञ की अग्नि में आहुति डालकर पर्यावरण शुद्धि में अपना योगदान दिया। मंगलमय जीवन की कामना की।

यज्ञ से पर्यावरण कैसे शुद्ध होता है? एवं प्रकृति में पर्यावरण संतुलित होकर किस प्रकार प्रकृति जन्य पदार्थों को पुष्टि एवं बल प्राप्त होता है। और वेद की ऋचाओं के द्वारा **पर्जन्यः वर्षतु फलवत्यो नः ओषधयः** के विषय में बताते हुए वेद तथा पर्यावरण के सम्बन्ध में चर्चा कर यज्ञ एवं पर्यावरण की उपयोगिता सिद्ध करने का प्रयास किया गया।

इस अवसर पर विद्यालय के इंटरेक्ट क्लव के छात्रों के द्वारा अस्थिशक्तिघनत्व परीक्षण शिविर का आयोजन भी किया गया। इस परीक्षण शिविर का मन्तव्य लोगों में तेजी से फैली रही ओस्टियोसिस बीमारी की तरफ ध्यान आकर्षित कराना था। इस शिविर में आकर लोगों ने इस बीमारी के प्रति न केवल चिंता जताई अपितु इस बीमारी के प्रति सचेत रहने के उपाय भी समझे।

विद्यालय प्राचार्या श्रीमती मोनिका मेहन जी ने कार्यक्रम के सफल आयोजन की भूरि–भूरि प्रशंसा कर समस्त आगंतुकों का धन्यवाद किया।

आर्य जगत्-परिवार की ओर से सभी पाठ्कों को दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ
ईश्वर हम सब को अज्ञान के अंधकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाये।
–सम्पादक

डी.ए.वी कॉलेज फिरोज़पुर में मनाया गया वन महोत्सव

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोजपुर कैंट में कॉलेज की प्राचार्या डॉ. पुष्पिंदर वालिया की अध्यक्षता में कॉलेज की इको क्लब, एनएसएस विभाग व एन सी सी यूनिट की ओर से 8 अगस्त 2014 को वन–महोत्सव मनाया गया। इस समारोह के मुख्यातिथि थे श्री डी पी एस खरबन्दा, डिप्टी कमिशनर, फिरोज़पुर। डॉ. हर्ष भोला, स्थानीय समिति के सम्माननीय सदस्य, इस समारोह में उपस्थित हुए। कॉलेज की प्राचार्या ने मुख्यातिथि का अभिवादन किया। तत्पश्चात् उन्होंने

अपने संबोधन में छात्राओं को बताया कि मानव शरीर पाँच तत्वों से बना है और पेड़ों की रचना भी पाँच तत्वों से हुई है। इस तरह पेड़ हमारे निकटवर्ती सम्बन्धी हैं। वे हमारी रक्षा करते हैं और हम ये संकल्प लें कि हम उनकी रक्षा करेंगे। मुख्यातिथि श्री डी पी एस खरबन्दा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में छात्राओं को बताया कि धरती के नीचे का पानी प्रति वर्ष 50 सै. मी. कम हो रहा है, जिससे आने वाले समय में टयूबवैल सूख जांएगे और परिणाम बहुत भयंकर होगा। उन्होंने 'रेन वाटर हारवैस्टिंग वैल' के प्रोजेक्ट को सबको अपनाने के लिए प्रेरित किया। इस अवसर पर 'वातावरण के संरक्षण में पेड़ों की भूमिका' विषय से सम्बद्ध स्वरचित कविताएं कॉलेज की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत की गयी। कुमारी संदीप व गुरप्रीत कौर की कविताओं, जिनका मूल स्वर था 'आओ विश्व को एक सुन्दर निवास स्थल बनाए' की भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी। विजेता छात्राओं को मुख्यातिथि के द्वारा सम्मानित किया गया। समारोह में लगभग 100 छायादार, औषधीय व सजावटी पौधे लगाए गए।

बी.डी.डी.ए.वी. धर्मशाला ने लगाया चरित्र निर्माण शिविर

बी.डी.डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल धर्मशाला (हि.प्र.) में दो दिवसीय चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। जिसका शुभारम्भ हवन–यज्ञ से हुआ। आर्य समाज धर्मशाला के प्रधान श्री अरुण पुरी जी सपत्नीक यज्ञ में उपस्थित हुए। धर्म शिक्षक मुकेश शास्त्री ने यज्ञ का संचालन किया। श्री रणधीर सेखड़ी उप–प्रधान आर्य समाज भी कार्यक्रम में उपस्थित रहे। शिविर में 60 विद्यार्थियों ने भाग लिया। उन्हें योग, मंत्रोच्चारण और चरित्र के महत्व का प्रशिक्षण दिया गया। यज्ञ और भजन संध्या में भजनोपदेशक बटाला वालों ने वातावरण को भक्तिमय बनाया।

अन्तिम सत्र में श्री लखनपाल, डी.एस.पी. धर्मशाला, विशेष रुप से पधारे और उन्होंने बच्चों को चरित्रवान बनने की प्रेरणा दी। तदुपरान्त बच्चों को पुरस्कार वितरित किए गए। प्राचार्य श्री एस.एच.ख़ान जी ने शिविर की सफलता एवं कार्यक्रम में भाग लेने वाले अध्यापकों का धन्यवाद किया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 19 अक्तूबर, 2014 से 25 अक्तूबर, 2014

हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो, महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयाऽदन्, रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्।।

ऋग् १०.४.४

ऋषिः **त्रितः आप्त्यः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(अङ्ग)** हे, **(अमूर)** अमूढ़, **(चिकित्वः)** ज्ञानी, **(अग्ने)** परमेश्वर!, **(मूराः)** मूढ़, **(वयं)** हम, **(महित्वं)** महत्ता को, **(न)** नहीं [जान पाते]।, **(त्वं)** तू, **(वित्से)** जानता है। [हमारा], **(वव्रिः)** रूपवान् आत्मा, **(शये)** सोया पड़ा है, **(जिह्वया)** जिह्वा [आदि इन्द्रियों] से, **(अदन्)** भोग करता हुआ, **(चरति)** विचरता है, **(विश्पतिः सन्)** राजा होता हुआ [भी], **(युवतिं)** प्रकृति–रूप युवति को, **(रेरिह्यते)** अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है।

● हे अग्ने! हे तेजोमय ज्ञानी प्रभु! हम मूढ़ हैं, तुम अमूढ़ हो। हम तो यह भी नहीं जानते कि 'महत्ता' किसका नाम है, महत्त्व प्राप्त करना किसे कहते हैं। हम तो समझते हैं कि सांसारिक दृष्टि से महिमाशाली होना, हाथी, घोड़े, रथ, सेवक आदि का स्वामी हो जाना ही महत्ता है। हमारा तो विचार है कि नचिकेता को यम ने जिस सांसारिक धन–दौलत, पुत्र–पौत्र, भूमि के राज्य आदि सम्पत्ति के प्रलोभन में फँसाना चाहा था, उस सम्पत्ति को पा लेना ही महत्ता है। पर हम मूढ़ अज्ञानियों के ऊपर रहनेवाले अमूढ़ ज्ञानी तुम जानते हो कि सच्ची 'महत्ता' क्या है।

हमारा रूपवान् आत्मा सोया पड़ा है, उसे यही चेतना नहीं है कि मैं किसलिए इस शरीर में आया हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है मुझे किधर जाना है। वह जिह्वा आदि इन्द्रियों से निरन्तर भोगों को भोगने में आसक्त हुआ विचर रहा है और इस भोग भोगने में ही अपने जीवन की इतिश्री मान बैठा है। भगवान् ने उसे 'विश्पति' बनाया है, शरीर–नगरी का राजा बनाया हैं, जिसमें मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि अनेक प्रजाएँ निवास करती हैं। उसे इस शरीर–नगरी को ईश्वरीय साम्राज्य बनाना चाहिए था, अध्यात्म–साधना द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र बनाना चाहिए था। शरीर–राष्ट्र को भोगों से जर्जर न कर सबल, सप्राण और समनस्क करना चाहिए था। पर धिक्कार है इस आत्मा को! यह तो एक 'युवति' को चाट रहा है, अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है। प्रकृति ही यह युवति है जो नटी बनकर आत्मा को अपने साथ नचा रही है, भोग भुगा रही है। आत्मा प्रकृति को चाट रहा है, प्रकृति आत्मा को चाट रही है। इस प्रकार आत्मा लौकिक भोग–विलासों में आनन्द ले रहा है।

हे मेरे आत्मन्! इस मूढ़ता को त्यागो, अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जगाओ, 'सच्ची महत्ता क्या है' इसे जानो, सोते से उठ खड़े हो, इन्द्रियों के वशीवर्ती न हो, अपितु इन्द्रियों के स्वामी बनो। प्रकृति को न चाटकर परम प्रभु के अमृत–रस का आस्वादन करो। तुम्हारा उद्धार होगा, तुम महिमाशाली बन जाओगे।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

दो रास्ते

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में छठे दिन की कथा आरम्भ हुई जिसमें सुनने वालों की बहुत भीड़ थी। स्वामी जी ने बताया कि पिछले पाँच दिनों की कथा में उन्होंने श्रेयमार्ग और प्रेयमार्ग की व्याख्या की और पाँच दिन कहीं बातों को दोहराना शुरू किया। 'कठोपनिषद्' में आयी 'यम' की कथा का संदर्भ देते हुए उन्होंने बताया कि 'यम' ने नचिकेता को प्रेयमार्ग के सभी आकर्षक देने का प्रस्ताव किया, परन्तु नचिकेता ने कहा कि दौलत से किसी की प्यास नहीं बुझती। ये सब कुछ मुझे नहीं चाहिए। 'यम' ने नचिकेता के मन को परखा और जाना कि यह लालच में आने वाला नहीं है तो उन्होंने नचिकेता को बताया कि वेद जिसके गीत गाते हैं, तपस्वी, योगी और संन्यासी जिसके लिए तप करते हैं, वह 'ओ३म' है, और कहा कि यह ऐसा अक्षर है जिसका कभी नाश नहीं होता। जो इस अविनाशी को जान लेता है, वह जो कुछ चाहे उसे मिल जाता है, यानी श्रेयमार्ग पर चलते हुए प्रेयमार्ग का सुख स्वतः मिल जाता है। श्रेयमार्ग पर चलने के लिए सामवेद का 91वाँ मंत्र सुनाया और उसमें जितने शब्द आए थे–जैसे, 'सोम', 'राजा', 'वरुण', 'अग्नि', आदित्य, इसकी विशद व्याख्या की। और अब आगे इसी के छठे शब्द का संदर्भ प्रस्तुत करना है.....।

अब आगे....

तब छठा शब्द है– 'विष्णु'। विष्णु का अर्थ है सर्वव्यापक। हम सर्वव्यापक तो बन नहीं सकते, परन्तु अपने दिल के अन्दर तो 'विष्णुपन' को, 'विशालता' को ला सकते हैं। संकुचितता को छोड़कर विशालहृदयता से काम ले सकते हैं। सबके भले में, सारे संसार के भले में अपना भला समझने का यत्न कर सकते हैं। याद रखो, यह सारा संसार ईश्वर का विराट् रूप है। वेद कहता है–

नमो विरूपाय च विश्वरूपाय च।

हे भगवन्! यह सारा विश्व, यह अनन्त ब्रह्माण्ड, अनन्त सूर्य, अनन्त चाँद, अनन्त तारे और ग्रह, अनन्त पृथिवियाँ, सब तुम्हारा रूप हैं। यह आकाश में सिर उठाकर खड़ी बर्फ़ानी चोटियाँ, ये ऊँचे पहाड़, ये उजाड़ जंगल, ये गहरी घाटियाँ, ये गाते हुए प्रपात, दौड़ती हुई नदियाँ, ये झूमते हुए बाग, ये लहलहाते खेत, ये शहर, ये ग्राम, ये मैदान, इनमें भाँति–भाँति के लोग, भाँति–भाँति के प्राणी और ये उछलते हुए समुद्र, ये गर्जते हुए बादल, ये कड़कती हुई बिजलियाँ, सब तुम्हारा रूप हैं। तुम्हारे इस विश्वरूप को, विराट्रूप को मैं नमस्कार करता हूँ। याद रखो, इन्सान हो, जाति या देश किसी दूसरे इन्सान, दूसरी जाति, दूसरे देश को दुःखी करेगा तो उसे कभी खुशी नहीं मिलेगी। दूसरे को दुःख देकर उसका अपना भला भी नहीं होगा। चीनवाले यदि समझते हैं कि भारत में विनाश फैलाकर उनका भला हो जायेगा तो ग़लत समझते हैं। ये सब–के–सब देश, यह सारी दुनिया तो भगवान का विराट्रूप है। इसके किसी भी भाग को दुःखी करोगे तो बाकी शरीर सुखी नहीं होगा, वह भी दुःखी होगा। सोचकर देखो, भगवान् ने यह अलग–अनग देश नहीं बनाये, अलग–अलग जातियाँ नहीं बनाई, पन्थ नहीं बनाये। भगवान् ने, अल्लाह ने, खुदा ने कभी यह नहीं कहा कि मैंने सूर्य केवल मुसलमानों के लिए बनाया हैः वह चमकेगा और प्रकाश देगा तो केवल मुसलमानों के लिए, दूसरों के लिए नहीं। भगवान् ने, परमात्मा ने, परमेश्वर ने कभी यह नहीं कहा कि बादल बरसेंगे तो केवल हिन्दू के खेत पर, मुसलमानों के खेत पर नहीं। उसकी हवा सबके लिए है, उसका पानी सबके लिये है, सूर्य सबके लिए है, चाँद सबके लिए है, धरती सबके लिए है। उसने तो तुम्हें अलग–अलग नहीं किया, फिर क्यों दीवारें खड़ी करके अलग–अलग हुए बैठे हो? विष्णु बनना है तो सबको अपना समझो। सारे संसार में ईश्वर के विराट् रूप को देखो और संकुचितता छोड़ दो। विशालहृदयता का रास्ता अपनाओ।

और फिर मैंने आपको बताया कि मैं दक्षिणी अमेरिका के 'सूरी–नाम' देश

thearyasamaj.org

दीपावली पर विशेष

ऋषि दयानन्द का महाप्रयाण

● डॉ. महावीर मीमांसक वेदमार्तण्ड

ऋषि दयानन्द के जीवन का मूल्याङ्कन करते हुऐ जे.टी. एफ जोर्डन ने अपनी पुस्तक *''दयानन्द–हिज लाइफ एण्ड वर्कस''* में लिखा है कि दयानन्द ने सच्चे शिव (ईश्वर) की जानने और उस की प्राप्ति के उद्देश्य से घर छोड़ा किन्तु वे अपने उद्देश्य से भटक गये और सामाजिक कार्यों में ही अपना जीवन व्यतीत करते हुऐ अन्त में प्राण त्याग गये।

एक विदेशी विद्वान ने ऋषि के जीवन पर कुछ लिखा, ऋषि के जीवन में उन्हें कुछ ऐसा लगा कि उनके जीवन पर लिखने के लिये अपनी लेखनी उठानी पड़ी, यह तो स्वागत योग्य बात है किन्तु ऋषि के जीवन का मूल्याङ्कन उन्होंने ऐसी टिप्पणी से किया कि ''वे अपने उद्देश्य से भटक गये थे'', यह लिखकर स्वयं जोर्डन साहिब उद्देश्य से भटक गये।

बालक मूलशङ्कर ने शिवरात्रि के अवसर पर शिव के लिये व्रत रखे पर शिव की मूर्ति पर चूहा चढते हुए और मूर्ति पर विष्ठा आदि करते हुए देखकर यह व्रत लिया था कि यह सच्चा शिव नहीं है मैं सच्चे शिव की खोज करके उसका दर्शन करूगा। दूसरी घटना बालक मूलशङ्कर के बाल्यकाल में उनकी बहन की और चाचा की मृत्यु थी जिसे देखकर मूलशङ्कर ने मृत्यु का रहस्य जानने का व्रत लिया। मूलशङ्कर ने इन्हीं उद्देश्यों से 22 वर्ष की अवस्था में घर छोड़ा और पचास वर्ष की अवस्था। तक इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संलग्न रहे।

मूलशङ्कर इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये घर छोड़ने के बाद ब्रह्मचारी चैतन्य बने फिर संन्यास लेकर स्वामी दयानन्द बने सच्चे शिव की खोज में उन्होंने सब कुछ छान मारा। इसी उद्देश्य से वे जगलों में भटके, पहाड़ों को छाना, नदियों को पार किया, मठों और आश्रमों में ठिकाना ढूंढा योगियों की शरण में रह कर योगाभ्यास किया, अनेक विद्वानों से अनेक शस्त्र पढ़े, गुरुओं से शिक्षा सभी ग्रन्थों को पढ़ डाला। और क्या कुछ नहीं किया जो उन्हें इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये करना चाहिये था।

इतना सब कुछ अपना जीवन लगाने के बाद उन्हें इस उद्देश्य में सफलता मिली। घण्टों–घण्टों समाधि लगाने की अवस्था तक पहुँचे और समाधि में उन्हें सच्चे शिव का अनुभव और साक्षात्कार होने लगा। अन्त में कुछ विद्या और प्राप्त करने के लिये वे गुरु की तलाश में गुरु विरजानन्द जी महाराज के पास मथुरा पहुंचे। बाहर से गुरु की कुटिया का दरवाजा खटखटाया, अन्दर से आवाज़ आई कौन है? दयानन्द ने बाहर से कहा कि यही जानने के लिये आया हूं कि मैं कौन हूं? गुरु तो पारखी थे, पहचान गये कि आज सच्चा जिज्ञासु, सच्चा शिष्य आ गया है। दरवाजा खोला और पूछा कि क्या पढ़े हो। दयानन्द ने सभी अनार्षग्रन्थ गिनवा दिये। गुरु ने आदेश किया कि इन अनार्ष ग्रन्थों को यमुना में बहाकर आओ। गुरु बिरजानन्द ने शिष्य दयानन्द को आर्षग्रन्थों का आगार दिखला दिया। पाणिनि की अष्टाध्यायी, पतंजलि ऋषि का महाभाष्य, यास्का चार्य का निरुक्त पढ़ा कर वेदविद्या के रहस्य को समझने की कुञ्जी दयानन्द को दे दी। दयानन्द ने यहां अपना विद्याध्ययन पूरा करके गुरु दक्षिणा दी। दक्षिणा में गुरु के प्रिय लौग भेंट किये। और गुरु से विदाई का आदेश मांगा गुरू विरजानन्द ने आदेश दिया कि बेटे! जो सच्चे शिव की प्राप्ति और जो वेद विद्या का ज्ञान तुम ने अपने जीवन का अमूल्य यौवन –काल लगाकर प्राप्त किया है उसका आनन्द तुम अकेले मत लेना। यह असंख्य प्राणी असंख्य आत्मायें–समूची जनता अज्ञान के अन्धकार में डूबी हुई दु:ख सागर में गोते खा रही है, ईश्वर के नाम पर अनेक मतमतान्तर, झूठे ईश्वर का प्रचार और प्रसार स्वार्थी लोग कर रहे हैं, इन सब के निवारण के लिये अपने जीवन को अर्पित कर दो।

दयानन्द के लिये गुरु का यह आदेश बड़ी गम्भीरता से विचार करने की विषय था। दयानन्द ने अन्त में निर्णय किया जिस सच्चे शिव को मैंने प्राप्त किया उस को प्राप्त करके मैं अकेला मोक्ष पहुंचा गया तो क्या, ये अनेक आत्माये तो अविद्या के अन्धकार में डूबी हुई हैं, अतः इनको भी अपने साथ मुक्ति दिलाऊंगा। यह दयानन्द कर तीसरा प्रण था जो प्रण उन्होंने अपने पहले दो प्रण पूरा करने को बाद लिया। और यहीं से ऋषि दयानन्द के सामाजिक सुधार कार्यों और धार्मिक अन्धविश्वासों के निवारण और खण्डन का युग प्रारम्भ होता है।

इस प्रण को ऋषि ने लिखित रूप में जनता के समक्ष रखा और इसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने ईश्वर के नाम पर जितने भी मत मतान्तर सम्प्रदायों के रूप में संसार में फैले हुऐ थे सबका पर्दाफाश करके सच्चे शिव–सच्चे ईश्वर के स्वरुप को जनता जनार्दन के समक्ष उजागर करने के लिये क्रान्ति का बिगुलबजा दिया, पाखण्ड–खण्डनी पताका आकाश में फहरा दी, धर्म के नाम पर भयङ्कर अन्धकारपूर्ण अन्धविश्वासों के जाल में जन–साधारण को जकड़कर अपनी गद्दी बनाने और बनाये रखने में लगे हुऐ सभी धर्मगुरुओं को सच्चे शिव ईश्वर की सच्चा स्वरुप निर्धारित करने और उसे ही एक मात्र समूची जनता का उपास्य बनाने का आह्वान किया। इसके साथ–साथ अनेक सामाजिक कुरीतियां जो धर्म और परम्परा के नाम पर हज़ारों वर्षों से प्रचलित थीं उनका खण्डन किया ताकि समाज और व्यक्ति की उन्नति में कोई बाधा न आने पाये। इस नकारात्मक पक्ष को जनता के समक्ष रखने से पहले सकारात्मक पक्ष रखा अपने कालजयी अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना की जिसका प्रथम समुल्लास ईश्वर–सच्चे शिव का स्वरुप उजागर करने और उसी का बखान करने के उद्देश्य से लिखा गया। आगे के नोंमी समुल्लासों में भी जीवन के सकारात्मक पक्ष–कर्त्तव्यपक्ष की व्याख्या की और अन्तिम चार समुल्लासों में धर्म के नाम पर–ईश्वर के नामपर जो पाखण्ड और अंध विश्वासों पर आधारित समुदाय चल रहे थे, सच्चे शिव का स्वरूप भूल कर मानव शिव या ईश्वर के झूठे स्वरुप में भटक रहा था उस का झण्डा फोड़ किया। यह ऋषि के जीवन का समूचा कार्यकलाप–समग्र गतिविधियां केवल शिव के स्वरुप का प्रचार–प्रसार करने के लिये ही तो थी। फिर जोर्डन ने कैसे लिख दिया कि दयानन्द अपने उद्देश्य से भटक गया।

किन्तु इन सब गतिविधियों के पीछे ऋषि की भावना समझने की मंहती आवश्यकता है जो भावना उन्होंने स्थान स्थान पर अनेक बार भूरिशः स्पष्ट अभिव्यक्त की है और वह भावना थी केवल मात्र कल्याण की भावना, सच्च मार्ग का र्निदश करने की भावना जो उनकी सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में प्रयुक्त सत्यार्थ शब्द से स्पष्ट हो जाती है। ईश्वर और शिव के सम्बन्ध में खोज करने में अपना जीवन लगाने के पश्चात् जो कुछ उन्हें प्राप्त हुआ यह सत्यार्थ प्रकाश में जनता जनार्दन–मानव जाति के सामने रख दिया। ऋषि की यह भावना ऐसी ही थी। किसी ने यदि पूर्व दिशा की ओजान हो और वह पश्चिम विश्व को ही पूर्व दिशा समझकर चल पड़े, किन्तु दूसरा व्यक्ति जो यह जानता हो कि यह व्यक्ति पश्चिम दिशा को पूर्व दिशा समझ कर भ्रान्तिवश गलत दिशा में जा रहा है, और वह उसपर कृपा करके उस के हित की भावना से उस बतला दे कि भाई। यह पूर्व दिशा नहीं है, जिस की ओर तुम जा रहे हो, पूर्व दिशा तो इधर है, यही हित की भावना ऋषि की थी। जैसे विद्यालय में यदि कोई बच्चा दो और दो के जोड़ कर उत्तर गलत समझता हो और अध्यापक के पूछने पर वह पांच, छः या तीन आदि गलत, उत्तर दे तो सही उत्तर जानने वाले अध्यापक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह उसे सही उत्तर 'चार' बतलाये। यही सही उत्तर सही दिशा बतलाने की हित की भावना ऋषि की थी। इस भावना को ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश की मुख्य भूमिका और सभी अनुभूमिकाओं में स्पष्ट किया हैं कि मेरी भावना किसी का अपमान करने, या नीचा दिखाने या कष्ट पहुंचाने की नहीं है अपितु सत्य असत्य स्पष्ट बतलाकर मानवजाति का हित और कल्याण करने का उद्देश्य है। ऋषि का अन्तिम यात्रा–महाप्रयाण–निर्वाण उनके उद्देश्य की प्राप्ति और उसी हित जीवन लगाने और उसी में अपना जीवन समाप्त करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

दीपावली का दिन है। विष शरीर से फूट–फूट कर निकल रहा है। महीनों भर इस असह्य पीड़ा से ग्रस्त होते हुएं भी उफ़ तक कभी नहीं की। अब शरीर जर्जर हो चुका है, और अधिक अब इस शरीर में नहीं रहना चाहिये। अतः उस प्रत्यक्ष परमात्म द्रष्टा योगी ऋषि ने निर्णय किया कि आज इस शरीर को त्याग कर परम–शिव परमात्मा के अनन्त आनन्द में विलीन होना है। जिस सच्चे शिव का बोध और प्राप्त करने के महाव्रत को लेकर घर छोड़ा था। सायं काल सूर्यास्त होने को है। सब भक्तों को आदेश दिया ''मेरे पीछे आजाओ।'' अजमेर में भिमाय की कोठी, जिस में ऋषि रोगशयया पर लेते हुए हैं उस के सब खिड़की दरवाजे खोलने का आदेश दिया। अब एकमात्र शिव में विलीन होने के लिये इस शरीर से महा–प्रयाण करने का अन्तिम क्षण आ गया है। वो अन्तिम महावाक्य जो ऋषि ने बोले और सब लोगों ने सुने, उनमें ऋषि के सम्पूर्ण जीवन की साधना का सार, उनके जीवन की उपलब्धि का सार, और सभी दर्शन शास्त्रों का अन्तिम गहन तत्त्व अन्तर्निहित है। वे महावाक्य थे ''ईश्वर तूने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी इच्छा पूर्ण हो'' इन अन्तिम शब्दों में ऋषि के जीवन की उपलब्धि का सार और उनके जीवन दर्शन का गहन तत्त्व छुपा हुआ है जो स्वंतत्र खोज का विषय है। ऋषि जिस सच्चे शिव को जानने का व्रत लेकर घर से निकले थे उसी की खोज और प्राप्ति में सम्पूर्ण जीवन लगाया उसी का बोध समस्त संसार को करवाने के लिये प्रचार प्रसार में अपना जीवन लगाया, उसी एकमात्र विश्व की परम महान्शक्ति को जीवन में सर्वत्र हाजिर नाजिर समझ कर सब कार्य किये। अपने सभी लिखित और वाचित रूप में उसी को एकमात्र आधार माना, उसी परम शक्ति के सहारे तूफानों और भयङ्कर आपदाओं से टक्कर ली और अन्त में उसी को पत्यक्ष करते हुऐ उसी में विलीन हो गये। फिर भी डॉ. जोर्डन ने कैसे लिख दिया कि दयानन्द अपने उद्देश्य से भटक गये।

वैदिक शोध सदन, ए–3/11
पश्चिम विहार, नई दिल्ली–63

thearyasamaj.org

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

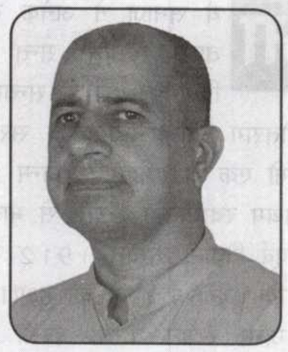

शंका–जीवात्मा भविष्य में जो विचार करेंगे, उसका ज्ञान ईश्वर को पहले से हो सकता है या नहीं?

समाधान–

• यह तो ईश्वर को पता है कि चुपचाप खाली तो कोई जीवात्मा बैठता नहीं, भविष्य में वह कुछ तो सोच विचार करेगा।

• किस–किस तरह के विचार जीवात्मा कर सकते हैं, जीवात्माओं की घटिया से घटिया और बढ़िया क्या–क्या थिंकिंग हो सकती है, वो पूरी सूची भगवान के पास में पहले से है।

• यह कभी नहीं हो सकता कि जीवात्मा ऐसा कोई विचार कर डाले, जिसे जानकर भगवान को बड़ा आश्चर्य हो कि–''अच्छा! जीवात्मा ऐसा भी सोच सकता है, यह तो आज ही पता चला।'' ऐसा कभी नहीं होगा कि जीवात्मा कोई ऐसा विचार या कार्य कर डाले, जो ईश्वर के लिए नया हो।

• जीवात्मा कुछ भी विचारे, उसकी जानकारी में है, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है, गॉड इज ओम्नीशियैन्ट।

• अब खास समझने की बात यह है कि यह पहले से तयशुदा (प्री–डिसाइडेड) नहीं है कि कौन जीवात्मा, कब क्या सोचेगा? इसलिए ईश्वर को यह पहले से पता नहीं। जीवात्मा जो कुछ भी सोचे, उसकी स्वतंत्रता है। पर वो जो भी सोचेगा, भगवान की लिस्ट में जरूर है। वह उससे बाहर नहीं सोच सकता। जीवात्मा की पूरी क्षमता ईश्वर को मालूम है।

शंका–मनुष्य ने इतने आविष्कार किये हैं। क्या ईश्वर यह पहले से जानता था, या वह आश्चर्य करता है?

समाधान– मनुष्य क्या कर सकता है, यह ईश्वर पहले से जानता है। मनुष्य के किसी काम से ईश्वर को आश्चर्य नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि मनुष्य ने ट्रैक्टर का आविष्कार कर खेती करना शुरु किया, तो यह बात ईश्वर पहले से जानता था। परन्तु ईश्वर यह भी जानता था कि हल से खेती करने में ज्यादा फायदा होगा और ट्रैक्टर से कम। ईश्वर सर्वज्ञ है। उसके पास अच्छे–बुरे कर्मों की पूरी सूची है। मनुष्य या जीवकृत कोई भी कर्म ईश्वर के लिए नया नहीं है।

ईश्वर हमेशा अच्छा काम करने के लिए कहता है, कठिनाईयों से बचने के लिए उपदेश देता है। वह जानता है कि, लोग चोरी, डकैती, लूट–मार, शोषण व अन्याय करेंगे, पर फिर भी ईश्वर सृष्टि बनाता है और सुझाव भी देता है। वह अच्छे और बुरे कर्मों का परिणाम भी बता देता है। यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह ईश्वर की बात माने या न माने। यदि वह नहीं मानता, तो उसे दण्ड भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।

शंका–ईश्वर के ज्ञान में केवल आवृत्ति होती रहती है, सर्वज्ञ ईश्वर को इसकी क्या आवश्यकता है?

समाधान– एक व्यक्ति ने चोरी की तो उसके एकांउट में केवल इतना लिखा जाएगा कि इसने चोरी की। ईश्वर केवल यह आवृत्ति करता है, कि इसने चोरी की। ईश्वर को पता है कि मनुष्य चोरी कर सकता है। चोरी के कर्म की आपके कर्मफल के खाते यानी एकाउंट में एन्ट्री (दर्ज) करने की आवश्यकता है।

जीव द्वारा दान दिया जाना ईश्वर के लिए कोई नया कर्म नहीं है। जब कोई व्यक्ति दान देता है, तो ईश्वर दान की, कर्म रूपी आवृत्ति करता है। इस व्यक्ति ने दान दिया, चलो इसके एकांउट में इस काम की एन्ट्री करो। बस इतना ही। एन्ट्री करने के लिए उसको आवृत्ति करनी होती है, और कोई कारण नहीं है।

ईश्वर चेतन तत्त्व है। जब चेतन तत्त्व के सामने कोई कर्म होता है, तब वह उसको देख या जानकर कुछ न कुछ विचार करता ही है। यदि वह कर्म उसकी जानकारी में पहले से हो, तो उसे 'ज्ञान की आवृत्ति ' कहते हैं। और यदि नई जानकारी हो, तो उसे 'ज्ञान में वृद्धि' कहते हैं। ईश्वर के लिये जीवकृत कोई भी कर्म नया तो है नहीं। इसलिए जीवकृत कर्मों को जानकर ईश्वर के 'ज्ञान की आवृत्ति' होती रहती है।

यह आवृत्ति इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना ईश्वर 'कर्मों का हिसाब ठीक से रखना और न्यायपूर्वक कर्मों का ठीक–ठीक फल देना' नहीं कर पाएगा। इसलिए ईश्वर के ज्ञान की आवृत्ति होती रहती है।

दर्शनयोग महाविद्यालय
रोजड़वन, गुजरात

जीवन यात्रा

● राज कुकरेजा

जीवन से मृत्यु पर्यन्त का काल जीवन है। आत्मा का शरीर के साथ संयोग जन्म है। जन्म की व्याख्या ऋषि दयानन्द सरस्वती जी उपदेश–मंजरी (जिस में पूना में दिए गये पन्द्रह व्याख्यान हैं) में करते हैं कि शरीर के व्यापार और क्रिया करने योग्य परमाणुओं को संघात जब होता है तब जन्म होता है, अर्थात् सब साधनों से युक्त होकर क्रिया–योग्य जब शरीर होता है, तब जन्म होता है, जन्म अर्थात् शरीर और जीवात्मा इनका संयोग। शरीर और जीवात्मा इन का वियोग मरण अर्थात मृत्यु कहलाता है। आत्मा सत–चित–स्वरुप है। आत्मा शरीर नहीं है। आत्मा नित्य, अजर, अमर है। यह शरीर आत्मा का निवास स्थान है। आत्मा का अपना कोई रूप–रंग व आकार नहीं है, जैसा शरीर धारण करता है, वैसा ही दिखने लगता हैं। शरीर का मिलना अपने किये शुभ–अशुभ कर्मों के फलस्वरूप होता है। हमारे कर्मों के अनुसार ही हमें मानव शरीर मिला है। शरीर का स्वरूप, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि भी जो प्रभु प्रदत हैं। वे हमारे पूर्व जन्मों के सञ्चित कर्मों के फल के अनुसार हैं। ऋषि पतंजलि योग दर्शन में स्पष्ट करते हैं कि कर्मों का फल जाति, आयु, और भोग रूप में मिलता है। जाति अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट आदि शरीर का मिलना। आयु अर्थात् इस शरीर के अनुसार जीवन काल, भोग का अर्थ इस शरीर के अनुसार भोग्य पदार्थों की प्राप्ति, यह जाति, आयु और भोग, शुभ और अशुभ कर्मों से उत्पन्न होने के कारण सुख और दुःख रूपी फल वाले होते हैं। अर्थात् पुण्य कर्मों से मनुष्य को सुख दायक जाति, आयु और भोग मिलते हैं। पाप कर्मों से पशु, पक्षी आदि के दुःखदायक जाति, आयु और भोग मिलते हैं।

मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य भी ऋषियों ने जो निर्धारित किया है, उस की पूर्ति भी जीवन काल में सम्भव है, मानव जीवन का उद्देश्य है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति। धर्म – जो सत्य व न्याय का आचरण है, अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, मानव जीवन में मुख्य लक्ष्य भी ऋषियों ने जो निर्धारित किया है।, उस की पूर्ति भी जीवन काल में संभव है। मानव जीवन का उदेश्य है धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की प्राप्ति। धर्म जो सत्य व न्याय का आचरण है, अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट पदार्थों का सेवन करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूट कर पूर्ण आनन्द में रहना है। ऋषि गौतम जी जो न्याय दर्शन के रचियता हैं, लिखते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को तीन ऋणों से मुक्त होना अनिवार्य है जो इस जीवन काल में होना ही संभव है। पितृ ऋण, देव ऋण और ऋषि ऋण। जिस में प्रथम ऋण संध्या, उपासना ओर यज्ञ आदि पुण्य कर्मों के करने से पूरित होता है। अंतिम तीसरा ऋषि ऋण वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढाना और उससे सम्बंधित संस्थाओं का यथा संभव सहयोग करके व्यक्ति इन ऋणों से मुक्त हो सकता है।

ऋषियों ने जीवन काल को चार भागों में बांटा है। ये जीवन काल के चार पड़ाव हैं। प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम है। यह आश्रम विद्या अध्ययन का काल माना गया है। दूसरा गृहस्थ आश्रम जिस में विवाह संस्कार, संतानोत्पत्ति और संतान का लालन–पालन मुख्य कर्त्तव्य माना गया है। तीसरा आश्रम वानप्रस्थ जिस में व्यक्ति, जब सन्तान की सन्तान हो जाए, पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निवृत हो कर अर्थात पारिवारिक उत्तरदायित्वों का भार संत को सौंप कर, वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ कर दृढ़ इन्द्रिय होकर वन में जा कर बसे। वानप्रस्था होकर नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग योगाभ्यास और सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करें। पश्चात सन्यास ग्रहण करे। सन्यासी को उचित है परिव्राजक बन कर सारे जगत में घूमे और सत्य विद्या का सदुपदेश करे। यही सन्यासी का मुख्या कर्त्तव्य कर्म है।

ईश्वर की असीम कृपा से प्रत्येक जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। जीवन यात्रा में जीव अपना मार्ग स्वयं चयन करता है। यात्रा के ही मार्ग हैं। प्रेय मार्ग और श्रेय मार्ग ये दोनों बिल्कुल विपरीत हैं पृथक–पृथक फलों को देने वाले हैं। प्रेय मार्ग जो इन्द्रियों को प्रिय है। अर्थात संसार के सभी भोग्य पदार्थ जो विभिन्न प्रकार के दुःखों से युक्त, विकारी, अनित्य और क्षणिक सुखदायी हैं, उन में सुख की भावना रखना। सबसे बड़ी भूल मनुष्य करता है कि भौतिक उपलब्धियों को प्राप्ति अपने जीवन का उद्देश्य मान लेता है। परिणामस्वरूप उपलब्धियों को प्राप्त

शेष पृष्ठ 09 पर

thearyasamaj.org

वीतराग स्वामी सर्वदानन्द

● डॉ. अशोक आर्य

आर्य समाज ने अनेक त्यागी तपस्वी साधु सन्त पैदा किये हैं। एसे ही संन्यासियों में वीतराग स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती जी भी एक थे। आप का जन्म भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से मात्र दो वर्ष पूर्व विक्रमी सम्वत 1912 या यूं कहें कि 1855 इस्वी को हुआ। आप का जन्म स्थान कस्बा बस्सी कलां जिला होशियारपुर पंजाब था। आप के पिता का नाम गंगा विष्णु था, जो अपने समय के सुप्रसिद्ध वैद्य थे। यही उनकी जीविकोपार्जन का साधन भी था।

स्वामी जी का आरम्भिक नाम चन्दूलाल रखा गया। यह शैव वंशीय परम्परा से थे। इस कारण वह शैव परम्पराओं का पालन करते थे तथा प्रतिदिन पुष्पों से प्रतिमा के साज–संवार में कोई कसर न आने देते थे किन्तु जब एक दिन देखा कि एक कुत्ता शिव मूर्ति पर मूत्र कर रहा है तो इनके हृदय में भी वैसे ही एक भावना पैदा हुई, जैसे कभी स्वामी दयानन्द के अन्दर शिव पिण्डी पर चूहों को देख कर पैदा हुई थी। अतः प्रतिमा अर्थात मूर्ति पूजन से मन के अन्दर की श्रद्धा समाप्त हो गई। इस कारण वह वेदान्त की ओर बढ़े। इसके साथ ही साथ फारसी के मौलाना रूमी तथा ऐसे ही अन्य सूफी कवियों की कृतियों व कार्यों का अध्ययन किया। यह सब करते हुए भी मूर्ति पर कुत्ते के मूत्र त्याग का दृश्य वह भुला न पाए तथा धीरे–धीरे उनके मन में वैराग्य की भावना उठने लगी तथा शीघ्र ही उन्होंने घर को सदा के लिए त्याग दिया और मात्र 32 वर्ष की आयु में सन्यास लेकर समाज के उत्थान के संकल्प के साथ स्वामी सर्वदानन्द नाम से कार्य क्षेत्र में आए।

अब आप ने चार वर्ष तक निरन्तर भ्रमण, देशाट्न व तीर्थाटन करते हुए देश की अवस्था को समझने का यत्न किया। इस काल में आप सत्संग के द्वारा लोगों को सुपथ दिखाने का प्रयास भी करते रहे।

स्वामी जी का आर्य समाज में प्रवेश भी न केवल रोचकता ही दिखाता है बल्कि एक उत्तम शिक्षा भी देने वाला है। प्रसंग इस प्रकार है कि एक बार स्वामी जी अत्यन्त रुग्ण हो गए किन्तु साधु के पास कौन सा परिवार है, जो उसकी सेवा सुश्रुषा करता। इस समय एक आर्य समाजी सज्जन आए तथा उसने स्वामी जी की खूब सेवा की तथा उनकी चिकित्सा भी करवाई। पूर्ण स्वस्थ होने पर स्वामी जी जब यहां से चलने लगे तो उनके तात्कालिक सेवक (आर्य समाजी सज्जन) ने एक सुन्दर रेशमी वस्त्र में लपेट कर 'सत्यार्थ प्रकाश' उन्हें भेंट किया। इस सज्जन ने सह प्रार्थना भी की कि यदि वह उसकी सेवा से प्रसन्न हैं तो इस पुस्तक को, इस भेंट को अवश्य पढ़ें।

स्वामी जी इस भक्त के सेवाभाव से पहले ही गद्–गद् थे फिर उसके आग्रह को कैसे टाल सकते थे। उन्होंने भक्त की इस भेंट को सहर्ष स्वीकार करते हुए पुस्तक से वस्त्र को हटाया तो पाया कि यह तो स्वामी दयानन्द कृत 'सत्यार्थ प्रकाश' था। पौराणिक होने के कारण इस ग्रन्थ के प्रति अश्रद्धा थी किन्तु आदि से अन्त तक पढ़ा। बस फिर क्या था ग्रन्थ पढ़ते ही विचारों में आमूल परिवर्तन हो गया। परिणामस्वरूप शंकर व वेदान्त के प्रति उनकी निष्ठा समाप्त हो गई। वेद, उपनिषद, दर्शन आदि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में जुट गये। आर्य समाज का प्रचार करते हुए आप ने अनेक पुस्तकं भी लिखीं यथा जीवन सुधा, आनन्द संग्रह, सन्मार्ग दर्शन, ईश्वर भक्ति, कल्याण मार्ग, सर्वदानन्द वचनाम्रत, सत्य की महिमा, प्रणव परिचय, परमात्मा के दर्शन आदि।

जब वह प्रचार में जुटे थे तो उनके मन में गुरुकुल की स्थापना की इच्छा हुई। अतः अलीगढ़ से पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर काली नदी के किनारे (जिस के मुख्य द्वार के पास कभी स्वामी दयानन्द सरस्वती विश्राम किया करते थे) तथा स्वामी जी के सेवक व सहयोगी मुकुन्द सिंह जी के गांव छलेसर से मात्र पांच किलोमीटर दूर हरदुआगंज गांव में साधु आश्रम की स्थापना की तथा यहां पर आर्ष पद्धति से शास्त्राध्ययन की व्यवस्था की (यह गुरुकुल मैनें देखा है तथा इस गुरुकुल के दो छात्र आज आर्य समाज वाशी,मुम्बई में पुरोहित हैं)। आप के सुप्रयास से अजमेर के आनासागर के तट पर स्थित साधु आश्रम में संस्कृत पाठशाला की भी स्थापना हुई। आप को वेद प्रचार की ऐसी लगन लगी थी कि इस निमित्त आप देश के सुदूरी वर्ती क्षेत्रों तक भी जाने को तत्पर रहते थे। आप तप, त्याग, सहिष्णुता की साक्षात मूर्ति थे। इन तत्वों का आप में बाहुल्य था। आप का निधन 10 मार्च1941 इस्वी को ग्वालियर में हुआ।

104–शिप्रा अपार्टमेन्ट,
कौशाम्बी 201010 गाजियाबाद

वैदिक धर्म अपनाओ – आर्य समाज बचाओ

● अश्विनी कुमार पाठक आर्य

मैंने आर्य समाज के कई विद्वानों से यह प्रश्न पूछा कि संसार में वैदिक धर्म का कहीं अस्तित्व है? इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर कोई भी विद्वान दे नहीं सका, जिस पर मुझे बहुत दुःख हुआ कि हम लोग आर्य समाज के सत्संगों तथा अन्य उत्सवों पर वैदिक धर्म की जय के उद्घोष तो खूब लगाते हैं परन्तु सरकारी कागज पत्रों में धर्म के खाने में हिन्दू ही लिखते–लिखाते हैं जो कि कोई धर्म ही नहीं है। क्योंकि हिन्दू धर्म की कोई परिभाषा करना ही कठिन है। हिन्दुओं में अलग–अलग विचारधारा के लोग हैं। इन का कोई एक धार्मिक सिद्वान्त नहीं है। कोई ईश्वर को मानता है, कोई नहीं मानता। कोई ईश्वर को निराकार मानता है और कोई साकार मान कर मूर्ति पूजा करता है। कोई मांसाहार पाप समझता है और कोई अपने देवी–देवताओं को भी शराब, मांस का भोग लगाता है। इसलिये कौन ठीक है और कौन अलग है? हिन्दुओं के निश्चय करना ही कठिन है।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी ने वेद के अनुसार हमारा धर्म वैदिक धर्म बताया था और यह कहा था कि हमारा प्राचीन नाम आर्य है, हिन्दू नहीं। क्योंकि यह नाम हमारे किसी भी धर्म ग्रन्थ में नहीं लिखा। उन्होंने 31 दिसम्बर 1880 ई. को आर्य समाज मुलतान के मंत्री मास्टर दयाराम वर्मा को एक पत्र में लिखा था कि जनगणना में सब लोग धर्म के खाने में वैदिक धर्म और जाति के खाने में आर्य लिखायें परन्तु आर्य समाज के नेताओं ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। जबकि इस बात का खूब प्रचार होना चाहिये था। ऐसा न होने के कारण आर्य समाज के अधिकांश लोग धर्म के खाने में हिन्दू ही लिखाते जा रहे हैं। इसलिये हमारे परिवार भी वैदिक धर्मी नहीं बन सके। देखने में आया है कि ज्यादा परिवार आर्य समाजी अथवा वैदिक धर्मी नहीं है। आखिर किस–किस का नाम लिया जाये। हमारे कई बड़े–बड़े स्वर्गवासी नेताओं के परिवार भी आज आर्य समाजी नहीं है। अगर हमारे परिवारों में वैदिक धर्म को मान्यता दी जाती तो हमारे परिवार वैदिक धर्मी ही कहलाते और आर्य समाज के सत्संगों से वह दूर न रहते। आर्य समाज के पुराने सदस्य दिवँगत हो रहे हैं और नये बन नहीं रहे। इस तरह आर्य समाज कब तक चलेगा? इसलिये जब तक वैदिक धर्म पारिवारिक धर्म नहीं बनेगा तब तक आर्य समाज प्रगति नहीं कर सकता। वेद प्रचार की भी ठोस योजना बननी चाहिये किसी से डरना नहीं चाहिए।

पौराणिक सनातन धर्म का प्रचार तो अपने आप ही परिवार की महिलाओं द्वारा हो रहा है जबकि आर्य समाजियों की पत्नियाँ कोई तो राधा स्वामी गुरू को और कोई ब्रह्माकुमारी मत अथवा पौराणिक पूजा पाठ में लगी हुई है और कभी–कभी आर्य समाज के हवन आदि के कार्यक्रमों में आ जाती है। इसलिये हमारी सन्तानें भी दुविधा में रहती हैं कि कौन ठीक और कौन गलत है। आर्य नेता इस बारे में विचार करें तथा वैदिक धर्म सभी कागज पत्रों में लिखने–लिखाने का प्रचार करें तभी वैदिक धर्म अस्तित्व में आ पायेगा। हिन्दुस्तान के नागरिक है इसलिये हम हिन्दू भी कहला सकते हैं।

हिन्दू समाज के अंग तो हैं ही, एक आर्य समाज ही ऐसी संस्था है जिसे हिन्दुओं की चिन्ता है जो आज तक इनकी रक्षा में प्रयत्नशील रहा है चाहे कोई माने अथवा न माने तथाकथित सनातनधर्मी लोग तो पांखण्ड और अंधविश्वास को ही धर्म समझकर बढ़ाते जा रहे हैं। इसलिये आर्य समाज अपने कर्त्तव्य को पहिचाने और यह प्रचार करता रहे कि हमारे पूर्वज श्रीराम, श्रीकृष्ण आर्य ही थे न कि हिन्दू और हम भी गर्व से अपने आपको आर्य कहे–कहलायें। कवि की पंक्तियां सब याद रखें–

आर्य हमारा नाम है, वैदिक हमारा धर्म।
ओ३म् हमारा लक्ष्य है, यज्ञ योग हमारा कर्म।
सत्य हमारा लक्ष्य है, गायत्री महामंत्रम्।
भारत हमारा देश है, सदा रहे स्वतंत्रम्।।

उड़ीसा के स्वामी धर्मानन्द ने, 200 परिवारों को वैदिक धर्म की दीक्षा दी है। सब जगह विद्वान यह दीक्षा दें। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में उपस्थिति घटती जा रही है। सार्वदेशिक का संगठन टूट चुका है। इस सभा का चुनाव कराने कोई नेता आगे नहीं आ रहा है। केवल हवन करने से ही आर्य समाज को बचाया नहीं जा सकता जब तक परिवार वैदिक धर्मी नहीं बनेंगे उन्नति नही होगी। प्रतिनिधि सभा को केन्द्र सरकार से वैदिक धर्म को मान्यता दिलाना आवश्यकता है क्योंकि जनगणना का स्टाफ यह कह कर टाल देता रहा है कि उनके पास तो वैदिक धर्म का नाम ही नहीं है। धर्म हमेशा चलते रहते हैं परन्तु संस्थायें नहीं।

सी–33, नानक पुरा,
नई दिल्ली–110021

thearyasamaj.org

आस्तिकवाद

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

ऋषि दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश के द्वादश–समुल्लास का विषय नास्कि मतों के अन्तर्गत चारवाक–बौद्ध तथा जैन मत के खण्डन–मण्डन विषयक व्याख्या है। प्रकृत संवाद जैनियों के 'प्रकरण रत्नाकर' भाग–2 के प्रशनोत्तर से सम्बन्धित है। स्वामी वेदानन्द द्वारा सम्पादित स्थूलाक्षर सटिप्पण सतयार्थप्रकाश के संस्करण में इस स्थल पर दी गई टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। जिसके अनुसार– ''प्रकरणरत्नाकर नामक ग्रन्थ, भाग–2 शाह भीमसिंह माणक द्वारा निर्णय सागर प्रेस, बम्बई में वि. सं. 1133 (1876ई.) में प्रकाशित हुआ था। 'प्रकरण रत्नाकर' भाग–2, पृष्ठ 177 से 211 तक यह संवाद है। जैन अपने को आस्तिक तथा ईश्वरवादियों को नास्तिक कहते हैं। सत्यार्थप्रकाशकार ने उसका यहाँ संक्षेप दिया है तथा आस्तिक के स्थान पर नास्तिक और नास्तिक के स्थान पर आस्तिक कर दिया है। अर्थात् 'प्रकरण रत्नाकर' के पूर्वपक्ष को उत्तरपक्ष और उत्तरपक्ष को पूर्वपक्ष कर दिया। 'आस्तिकवाद' नामक यह लेख 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वादश सम्मलास के आधार पर लिखा गया है।

नास्तिक– ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होता, सब कुछ कर्म के आधार पर होता।

आस्तिक– यदि सब कुछ का आधार कर्म है तो कर्म किससे होता है। यदि कर्म जीव द्वारा होता है, तो जीव के श्रोत्र, चक्षु आदि साधनों से ही कर्म सम्पन्न होता है, तब उन श्रोत्रादि साधनों का आधार क्या है। यदि ये साधन और जीव अनादि है अर्थात् इन श्रोत्रादि साधनों तथा जीव का काल और स्वभाव अनादि है, तो जीव और जीव के साधन चक्षुरादि का बन्धन से छूटना असम्भव होगा अनादि होने के कारण। बन्धन से न छुट पाने से मुक्ति का भी अभाव हो जायेगा। यदि जीव और उसके साधन चक्षु, श्रोत्र आदि को 'प्रागभाव' के समान अनादि और सान्त मान जाए तो विना कोई प्रयास के सभी जीवों के कर्म स्वतः निवृत्त हो जाएँगे। फिर उसके लिए जैन आदि मतों का अवलम्बन लेना व्यर्थ है।

नास्तिक– जीव अपने पाप–पुण्य का फल दुःख–सुख के रूप में स्वयं भोगता है, उसके फल का आधार उसके पाप–पुण्य रूपी कर्म हैं। अतः ईश्वर को फल प्रदाता के रूप में तथा एक अनादि सत्ता के रूप में मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आस्तिक– यदि हमारे कर्मों के फल को प्रदान करने वाला ईश्वर न हो तो कोई भी जीव अपने पाप रूपी कर्म का फल दुःख अपनी इच्छा से क्यों भोगता? हम देखते हैं कि संसार में कोई चोर अपने चोर कर्म का फल कारावास आदि का दण्ड अपनी इच्छा से नहीं भोगता है। राज्य व्यवस्था से ही चोर आदि अपने दुष्कर्मों का फल दण्ड के रूप में भोगते हैं, उसी प्रकार जीव भी अपने पाप कर्मों का फल ईश्वर की न्याय व्यवस्था से इस जन्म में तथा जन्मान्तर में भोगते हैं। इसी प्रकार जीव अपने पुण्य कर्मों का सुखरूपी फल भी ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार प्राप्त करता है। अन्यथा कर्म अचेतन है, वे फलकाल में कैसे पहचानेंगे कि हम किस जीव के कर्म हैं। फल प्रदाता ईश्वर को न मानने पर 'कर्म संकर' हो जाएगा अर्थात् एक जीव का कर्म दूसरे जीव के साथ सम्बन्धित हो जायेगा।

नास्तिक– जगत् को बनानेवाले ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ईश्वर कोई कर्म नहीं करता। यदि वह कर्म करेगा तो उसे कर्म का फल भी भोगना पड़ेगा। इसलिए हम केवली–प्राप्त मुक्तों को अक्रिय मानते हैं। इसलिए आपको भी ईश्वर को अक्रिय मानना चाहिए।

विशेष–ज्ञातव्य है कि यह 'नास्तिक–आस्तिक संवाद' का सन्दर्भ जैनमत के आधार पर है। जैन मतानुसार 'जीव ही परमेश्वर हो जाता है।' जैनी लोग अपने तीर्थंकरों को ही केवली मुक्तिप्राप्त और परमेश्वर मानते हैं।

आस्तिक– यह जड़ जगत् विना चेतन ईश्वर के नहीं बन सकता, क्योंकि जगत् के जड़ होने से जड़ में स्वयं बनने का सामर्थ्य नहीं है। ईश्वर के अतिरिक्त अल्पज्ञ और अल्पशक्ति जीव में जगत् बनाने का सामर्थ्य नहीं हैं। ईश्वर के अतिरिक्त अल्पज्ञ और अल्पशक्ति जीव में जगत् बनाने का सामर्थ्य नहीं है। इससे यही सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही जगत् को बनाता है। नित्य शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव होने से ईश्वर जगत्कर्त्ता होकर भी जगत् में फँसता नहीं है। जीव ही अल्पज्ञ होने से राग–द्वेष आदि मलीन कर्मों को करता हुआ बन्धन में फँसकर पाप–पुण्य का फल दुःख–सुख प्राप्त करता है। ईश्वर चेतन होने से कर्त्ता है, क्योंकि चेतन पदार्थ अकर्त्ता नहीं हो सकता। कर्त्ता कभी क्रिया से पृथक् नहीं होता। अतः ईश्वर अक्रिय या निष्क्रिय नहीं हैं। तीर्थंकर के जीव होने से वे कभी ईश्वर नहीं हो सकते।

यदि जीव ईश्वर बन जाता है तो वह अनित्य और पराधीन होगा। क्योंकि वह जीव ईश्वर बनने के पूर्व जीव ही था, किसी निमित्त से ईश्वर बना है। अतः वह परिणामी होने से अनित्य है। जिस निमित्त से जीव ईश्वर बनेगा उसी निमित्त से पृथक् होने से वह पुनः जीव बन जाएगा। अतः जीव उस निमित्त के अधीन होने से पराधीन हो जाएगा।

वस्तुतः जीव कभी भी ईश्वर नहीं बन सकता क्योंकि वह अनादि और अनन्त है अनादि और अनन्तकाल पर्यन्त रहने वाला जीव अपना जीवत्व स्वभाव नहीं छोड़ सकता। फिर जीव को जिन कर्मों के कारण ईश्वर बनना आप (जैनी) मानते हैं, उन कर्मों को आप 'प्रागभाव' के समान 'अनादि' और 'सान्त' भी मानते हैं। अनादि और सान्त कर्म ईश्वर या जीव में समवाय सम्बन्ध से नहीं रहेगा। कर्म ईश्वर के साथ संयोग सम्बन्ध से रहने पर संयोगज होने के कारण अनित्य होगा क्योंकि समवाय सम्बन्ध ही नित्य होता है। जैसे गुण–गुणी में, अवयव–अवयवी में, जाति– व्यक्ति में समवाय सम्बन्ध होने से नित्य सम्बन्ध होने से नित्य सम्बन्ध होता है।

मुक्ति में जीवों को क्रियाहीन मानना भी ठीक नहीं है क्योंकि मुक्त जीव ज्ञानवान् होते हैं। ज्ञानवान् जीव अन्तः क्रियावान् अवश्य होगा। यदि मुक्ति में जीव को अज्ञानी और पाषाणवत् जड़ माना जाए तो निश्चेष्ट जीव की मुक्ति क्या हुई? अज्ञानी और जड़ जीव के लिए वह मुक्ति भी अन्धकार और बन्धनस्वरूप हो गई।

नास्तिक– ईश्वर व्यापक नहीं है। यदि वह व्यापक है तो उससे व्याप्य सभी वस्तु को (ईश्वर के चेतन होने से) चेतन होना चाहिए। समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि की उत्तम–मध्यम–निकृष्ट व्यवस्था भी क्यों हैं? क्योंकि ईश्वर सभी में एक समान व्यापक है।

आस्तिक– व्याप्य और व्यापक एक कभी नहीं होते। व्याप्य एकदेशी और व्यापक सर्वदेशी होता है। जैसे घट आदि में आकाश व्यापक है और दोनों के गुण पृथक् हैं। व्यापक आकाश अदृश्य और अस्पृश्य है किन्तु घट दृश्य और स्पर्श के योग्य है। पृथिवीस्थ घट–पट आदि पदार्थ एकदेशी और आकाश सर्वदेशी है। घट–पट आदि व्याप्य पदार्थ हैं और आकाश व्यापक है दोनों एक नहीं हैं, उसी प्रकार व्याप्य जगत् और इसमें व्यापक ईश्वर एक नहीं है। जैसे–घट–पटादि में आकाश व्यापक है किन्तु घड़ा–कपड़ा (घट–पट) आदि आकाश नहीं है वैसे ही सभी वस्तुओं में चेतन परमेश्वर व्यापक है किन्तु सभी वस्तुएँ चेतन नहीं हैं।

समाज में मनुष्य दो प्रकार के होते हैं विद्वान् और मूर्ख या धर्मात्मा और पापी। अपने गुण–कर्मों के कारण ही विद्वान् और धर्मात्मा उत्कृष्ट तथा मूर्ख और पापी निकृष्ट माने जाते हैं। उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र अपने–अपने गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की संज्ञा प्राप्त करते हैं।

विशेष– इस सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि स्वामी दयानन्द ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र की सामाजिक व्यवस्था (वर्णव्यवस्था) का आधार गुण–कर्म–स्वभाव मानते हैं जन्म पर आधारित दूषित व्यवस्था को नहीं। स्वामीजी ने वर्ण–व्यवस्था की विशद व्याख्या सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में की है।

आस्तिक– सृष्टि दो प्रकार की होती है– (१) ऐश्वरी, (२) जैवी। ऐश्वरी सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर है जैवी सृष्टि का नहीं। पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आदि और पृथिवी पर वृक्ष, फल, ओषधि, अन्नादि की रचना ईश्वर करता है। ईश्वर रचित, अन्न–फलादि को लेकर कूटना, पीसना भोजनादि का निर्माण जीवों का काम है। इसके विना जीवों का जीवन भी सम्भव नहीं है।

इसी प्रकार आदि सृष्टि में जीवों के शरीर और साँचे को अनाना ईश्वर का कार्य पश्चात् उनसे पुत्रादि की उत्पत्ति करना जीवों का कार्य है।

निष्कर्षत – अमैथुनी सृष्टि ईश्वर करता है तथा मैथुनी सृष्टि जीव

नास्तिक– जब परमात्मा अनादि, अनन्त, नित्य और शाश्वत है वह सच्चिदानन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है, तब आनन्द को छोड़कर जगत् निर्माण के प्रपञ्च और दुःख में क्यों पड़ा? जबकि सामान्य मनुष्य भी सुख को छोड़कर दुःख उठाना नहीं चाहता।

आस्तिक– परमात्मा कभी आनन्द को छोड़कर किसी दुःख या प्रपञ्च का कार्य नहीं है। वह '**क्लेशकर्मविपाकाशय**' से सर्वथा अपरामृष्ट है। प्रपञ्च और दुःख में वह गिरता है जो एकदेशी होने से आनन्द और सुख को छोड़कर दुःख प्रपञ्चादि में पड़ जाता है परमात्मा के सर्वदेशी होने से उसका आनन्द का छोड़ना सम्भव नहीं।

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

thearyasamaj.org

वेद प्रचार ही सच्चा धर्म प्रचार है

● मनमोहन कुमार आर्य

आजकल यदि धर्म संज्ञक देशी विदेशी मत–मतान्तरों या संस्थाओं की संख्या गिनने लगें तो यह अत्यन्त कठिन व जटिल श्रम साध्य कार्य होगा। सम्भवतः सभी धार्मिक संस्थाओं की गणना की भी न जा सके। यदि गणना कुछ–कुछ कर ली जाये तो इन सबकी मान्यताऐं क्या–क्या हैं, उनमें दूसरों से क्या अन्तर है, यह जानना भी कठिन कार्य है। एक मौलिक प्रश्न है कि क्या यह सभी संस्थाऐं या मत–मतान्तर धर्म हैं? यदि यह सभी धर्म मान लिए जायें तो फिर यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि धर्म एक होता है व अनेक? आईए, धर्म वस्तुतः है क्या इस पर विचार करते हैं। कहा जाता है कि अग्नि का धर्म जलाना है। इसी प्रकार से कहा जाता है कि वायु का धर्म स्पर्श, जल का शीतलता, पृथिवी का गन्ध आदि है। आकाश का गुण शब्द कहा जाता है जो कि वैज्ञानिक आधार पर भी सिद्ध है। किसी वस्तु के गुण ही वस्तुतः धर्म कहलाते हैं। यदि अग्नि का धर्म जलाना है तो क्या स्थान स्थान पर जो अग्नियां हैं, उनके धर्मों व गुणों में कहीं न्यूनाधिक अन्तर है? ऐसा नहीं है, अग्नि चाहे हमारे घर में हो, या पड़ोसियों के यहां या सुदूर स्थान पर, सब जगह उसके गुण वा धर्म एक समान होते हैं। किसी भी पदार्थ के गुणों को ही उसका धर्म कहा जाता है। यदि ऐसा है तो मनुष्यों का धर्म क्या हो सकता है। मनुष्य कोई जड़ पदार्थ न होकर एक चेतन प्राणी है जो सोच सकता है, विचार, चिन्तन, मनन, ऊहापोह, विश्लेषण आदि कर सकता है। ऐसे मनुष्य या प्राणी का धर्म क्या हो सकता है। इसका निर्धारण या तो ईश्वर कर सकता है या फिर कोई बहुत बुद्धिमान मनुष्य कर सकता है। हम यह भी जानते हैं कि महाभारत काल तक भारत व संसार के अनेक देशों में वैदिक धर्म व संस्कृति का प्रचार व प्रसार रहा है। देश में ऋषियों, विद्वानों, ज्ञानियों, चिन्तकों व विचारकों की बड़ी संख्या रही है। ऐसे लोगों को ही धर्म चर्चा करने व धर्म निर्णय करने का ज्ञान व सलीका आता है। **इन लोगों के विचारों को पढ़ने पर यह ज्ञात होता है कि सत्य का आचरण ही मनुष्य धर्म है।** यह सत्याचार न केवल भारत के किसी एक या व्यक्ति समूहों का धर्म है अपितु सारी दुनिया के मनुष्यों का धर्म है। संसार में एक भी ऐसा बुद्धिमान मनुष्य नहीं मिलेगा जो धर्म की इस परिभाषा से सहमत न हो। इसमें अन्य अनेक बातें भी जोड़ी जा सकती हैं जो सत्याचार की विरोधी न होकर पूरक हों। जैसे इस संसार को बनाने वाले सृष्टिकर्ता ईश्वर की उपासना करना। यज्ञ व हवन करना जिसमें शुद्ध घृत व औषधियों से वैदिक ऋषियों द्वारा बनाई गई प्रक्रिया या विधि से अग्निहोत्र करने से वायु मण्डल की शुद्धता व पवित्रता में वृद्धि होती है, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक किटाणुओं का नाश होता है, ज्ञात व अज्ञात शारीरिक रोगों की निवृत्ति व मानसिक विकार दूर होकर चरित्र निर्माण होता है और यहाँ तक की सभी शुभकामनाऐं भी पूर्ण होती है। इसी प्रकार से माता–पिता की श्रद्धा पूर्वक सेवा करना, ज्ञानियों, अतिथितियों व साधु संयासियों का सत्कार करना तथा पशु–पक्षियों आदि की रक्षा व उनको भोजन द्वारा तृप्त करना भी सत्याचार के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। माता–पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्ताओं को परा व अपरा विद्या की शिक्षा व संस्कार देकर उन्हें योग्य बनाएँ। यह तो धर्म की बात हुई अब वेद क्या हैं व वेदों का आचरण धर्म कैसे हैं इस पर विचार करते हैं।

वेद के बारे में प्राचीन ग्रन्थों में यह उल्लेख पाया जाता है कि वेद आदिकालीन अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से विद्यमान है। फिर इनका रचयिता कौन है? इसका उत्तर है कि आदि कालीन होने से इनका रचयिता कोई मनुष्य या विद्वान न होकर इस संसार को रचने वाला सृष्टिकर्ता ही इसका तथा आध्यात्मिक ज्ञान व विज्ञान का भी रचयिता है। इसको सिद्ध भी किया जा सकता है। हमने विचार करने पर पाया है कि प्राचीन काल में मनुष्य को उसी सत्ता ने जन्म दिया जिसने इस सृष्टि को बनाया है। विज्ञान व हमारे देशी व विदेशी वैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करें या न करें परन्तु यह शत–प्रतिशत सत्य है कि इस सृष्टि की रचना ईश्वर से हुई है। यदि ईश्वर न हो और वह सृष्टि की रचना न करे, तो सृष्टि अस्तित्व में नहीं आ सकती। स्वतः सृष्टि का निर्माण वैज्ञानिक नियमों से ही असत्य सिद्ध होता है। अतः सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता तथा मानव जीवन के निर्वाह के लिए उत्कृष्ट ज्ञान का देने वाला एकमात्र ईश्वर ही सिद्ध होता है। यहां ज्ञान, ज्ञान देने वाला व ज्ञान लेने वाला तीन पृथक सत्ताऐं हैं। सृष्टि में समस्त ज्ञान का आदि मूल ईश्वर है। इसका तात्पर्य है कि ज्ञान रहित जड़ प्रकृति का उपयोग कर इससे सृष्टि यथा सूर्य, चन्द्र, पृथिवी व ग्रह–उपग्रह तथा इस ब्रहमाण्ड की रचना करने वाला ईश्वर है। ईश्वर ज्ञानवान, सर्वज्ञ, अनादि, अनन्त, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, दयालु व न्यायकारी सत्ता है। सृष्टि की रचना करने के ज्ञान, बल, सर्वातिसूक्ष्म व सर्वव्यापक सत्ता की आवश्यकता है जो कि ईश्वर है। इसको जानने व समझने का एक ही उपाय है कि वेदों का अध्ययन और योग विधि से ईश्वरोपासना करना। हमारे वैज्ञानिक क्योंकि यह दोनों ही कार्य न तो जानते हैं और न ही करते हैं, अतः वह ईश्वर को जानने व समझने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं। जब वह अपने वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन में ध्यान का सहारा लेते हैं तो ईश्वर को जानने में भी यदि ध्यान विधि से चिन्तन करें, तो सफलता अवश्य मिल सकती है। रामायण व महाभारत ग्रन्थों से सिद्ध है कि मर्यादा पुरूषोत्तम राम तथा योगेश्वर श्री कृष्ण महाराज ईश्वरोपासना व यज्ञ आदि कर्म किया करते थे। उनके बाद उत्पन्न आदि शंकराचार्य भी ईश्वर के अस्तित्व में पूरी तरह विश्वास रखते थे। उनके ग्रन्थ वेदान्त दर्शन, गीता व उपनिषदों के भाष्य से उनकी ईश्वर विषयक मान्यताओं को जाना जा सकता है। इसी प्रकार महर्षि दयानन्द भी आदर्श ईश्वर उपासक थे। उन्होंने ईश्वर के स्वरूप का वर्णन वेद एवं वैदिक साहित्य के आधार पर किया है जो सत्य व व्यवहारिक है, काल्पनिक कदापि नहीं ऐसा अनुभव अध्येता व ईश्वर उपासना करने वालों का है। हमारा अनुमान है कि यदि बड़े–बड़े वैज्ञानिक योग, ध्यान विधि से वैदिक सिद्धान्तों को जानकर उपासना करने का प्रयास करें तो उन्हें तो उन्हें ईश्वर की सत्ता का ज्ञान हो जायेगा। वैज्ञानिकों का ईश्वर को न मानना कुछ इस प्रकार का है कि कोई विद्वान किसी पुत्र का अस्तित्व स्वीकार करता है परन्तु समीप में पिता के उपस्थित न होने पर उसके अस्तित्व से इन्कार करता है। इसी प्रकार वैज्ञानिक सृष्टि को तो स्वीकार करते हैं परन्तु इस सृष्टि के रचयिता को अस्वीकार कर देते हैं। उनका यह कथन अज्ञान व अवैज्ञानिक ही कहा जा सकता है। सृष्टि है तो सृष्टिकर्ता अवश्य है उसी प्रकार से जिस प्रकार से पुत्र है तो उसके माता–पिता अवश्य ही हैं।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न सहस्रों मनुष्यों में चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। उन्होंने यह ज्ञान अन्य पुरुष ब्रह्मा जी को कराया। वेदों के ज्ञानी होने से यह पांचों महान आत्मायें ऋषि की उपाधि की सर्वागीण उन्नति होती है। ईश्वर, ईश्वर का स्वरूप, ईश्वर के कार्य तथा इसी प्रकार जीवात्मा, इसका स्वरूप व इसके कार्यों पर वेदों में विस्तार से चर्चा है। इनके साथ ही सृष्टि व प्रकृति का भी ज्ञान वेदों में विद्यमान है। मनुष्य के सभी कर्तव्यों का ज्ञान भी वेदों में दिया गया है। कृषि, युद्ध, राजधर्म, गोपालन, अंहिसा, ईश्वरोपासना, यज्ञ, स्त्री का गौरव, विवाह, शिक्षा, संस्कारों का ज्ञान व इनके संकेत भी वेदों में दिये जिस पर ध्यान केन्द्रित कर मनुष्य इन विद्याओं का विस्तार कर सकता है जैसा कि आज के वैज्ञानिकों ने किया है। अतः वेदों का अध्ययन व उसकी शिक्षाओं के अनुसार आचरण ही सभी मनुष्यों का धर्म है। यदि इनका प्रचार किया जाये तो उसे वेद प्रचार कहेंगे। इसी प्रकार से वैदिक शिक्षाओं का प्रचार ही धर्म का प्रचार कहलाता है। आजकल जो धर्म नाम से कार्यरत संस्थायें व मत आदि हैं, उन्होंने कुछ वेदों का और कुछ व अनेक कहानी किस्से आदि बना कर नये नाम से मत, धर्म, सम्प्रदाय आदि बना लिये है। वैदिक शिक्षा, ज्ञात, व कर्तव्यों की शिक्षा अपने आपमें पूर्ण है। इससे जीवन का उद्देश्य – धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष अर्थात् भोग व अपवर्ग की प्राप्ति होने से यही सारी दुनिया के लोगों के लिए कर्त्तव्य व आचरण करने योग्य है। इसके विपरीत यदि वह मत–मतान्तरों के अनुयायी बनते हैं तो वहां आधी–अधूरी व कुछ धर्म विरुद्ध बातें व कार्य ऐसे हैं, जिससे मनुष्य के जीवन के बन्धनों के कटने के स्थान पर बन्धनों का परिमाण बढ़ता है। यह बातें वेदाध्ययन करने के बाद प्राप्त शुद्ध बुद्धि से ही जानी जा सकती है।

लेख की समाप्ति पर हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि वेद प्रचार और धर्म प्रचार एक दूसरे के पूरक एवं पर्याय हैं। मनुस्मृति में भी मनु महाराज ने कहा है कि 'वेदाखिलो धर्ममूलम' अर्थात् धर्म का मूल वेद है। मूल को छोड़कर यदि पत्तों को पानी दिया जायेगा तो वृक्ष या पौधा सूख जायेगा। आईये, मत–मतान्तरों की सोच से ऊपर उठकर ईश्वर के सच्चे स्वरूप तथा वेदों की समग्र शिक्षाओं को जान कर उसका पालन करें और अपने जीवन को सफल करें। वेदों का ज्ञान व उसकी शिक्षायें ही धर्म हैं, अन्य जो भी है यदि वह वेदों के अनुकूल हैं तो वह धर्म, अन्यथा धर्म नहीं हैं। हमें विचार करना चाहिये और सत्य को स्वीकार करना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि समय आगे निकल जाये और हम मत–मतान्तरों के चक्कर में फंस कर अपना जीवन बर्बाद कर लें। वेद एक ऐसा महावृक्ष है जिसके नीचे अक्षय छाया है और जिसमें बैठने से ही जीवन का कल्याण होता है व हो सकता है

पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः 09412985121

thearyasamaj.org

☞ पृष्ठ 05 का शेष

जीवन यात्रा

करके और तृष्णा लालसा को बढ़ा लेता है जिसे से मनुष्य को अतृप्ति, असंतोष, भय, परतन्त्रता और दुख ही हाथ लगता है। तृष्णा के स्वरूप का भी भर्तृहरि वैराग्याशतक में बड़ा सुंदर वर्णन करते हैं कि......

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता,
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः,
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।

श्लोक का भाव है कि हम संसारिक विषय भोगों का उपभोग नहीं करते, अपितु भोग ही हम को भोगते हैं। हमने तप नहीं किया। बल्कि तीनों ताप (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) जीवन भर हमें ही तपाते रहे। भोगों को भोगते–भोगते काल हो हम ही नहीं काट पाए, काल ने हमको ही नष्ट कर दिया। तृष्णा तो बूढ़ी नहीं हुई हम ही बूढ़े हो गये।

श्रेय मार्ग यह अध्यात्मिक उन्नति का मार्ग है। श्रेय पथ पर मनुष्य तृष्णा लालसा को समाप्त कर सकता है। ये सब भौतिक पदार्थ हमारे लिए साधन मात्र हैं, हम इन के लिए नहीं, ये हमारे लिए बनें हैं। हमें इन का दास नहीं होना चाहिए प्रत्युत हमें महान उदेश्य व लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इन्हें अपना सहायक समझ उचित सीमा तक इन साधनों का प्रयोग करना चाहिए। जब ऐसा बोध हो जाता है। तब सीधा अध्यात्म का मार्ग खुल जाता है। इस श्रेय मार्ग पर प्रगति करता हुआ जीव मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। कठोपनिषद में यमाचार्य नचिकेता को उपदेश देते हैं कि एक श्रेय मार्ग है, दूसरा प्रेय मार्ग है दोनों को लक्ष्या पृथक–पृथक हैं ये दोनों पुरुष को बांधते है। इनमें जो श्रेय का अवलम्बन करता है, उस का कल्याण होता है। जो प्रेय को चुनता है, वह असली उदेश्य से गिर जाता है। श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य को प्राप्त होते हैं बुद्धिमान परीक्षा करके उन में भेद करता है। बुद्धिमान प्रेय की अपेक्षा श्रेय को चुनता है, किन्तु मंदबुद्धि परीक्षा करके उन में भेद करता है। बुद्धिमान प्रेय की अपेक्षा श्रेय चुनता है, किन्तु मंदबुद्धि मनुष्य योग मोक्ष देने वाला होने से प्रेय को अधिक पसंद करते हैं। प्रेय मार्ग में पड़े हुए मनुष्य स्वयं को बुद्धिमान और पंडित मानने लगते हैं परन्तु यही मूढ जन होते हैं, ये अंधे से ले जाए जाते हुए, अंधों की तरह ठोकरे खोते हुए मारे–मारे फिरते हैं अर्थात जन्म और मृत्यु के चक्र में पिसते रहते हैं।

हमारे ऋषि मुनियों ने और धार्मिक शास्त्रों ने इस ततेय को स्वीकार किया है कि ज्ञान के कारण ही मनुष्य को संसार में सर्वश्रेष्ठ प्राणी को गौरव मिला है और मनुष्य जीवन अनेक पुण्यों का फल है। इसलिए मानव जीवन दुर्लभ है और अमूल्य है। मनुष्य जीवन से बढ़ कर और कुछ कीमती नहीं है। मानव जीवन की महत्ता को कवियों ने व भजनोपदेशकों ने अपनी कविताओं व भजनों के स्वरों में बड़े ही सुन्दर ढंग से पिरोया है।

इन नर तन को पाना, बच्चों का कोई खेल नहीं।

जन्म जन्म के शुभ कर्मों का, होता जब तक कोई मेल नहीं।।

हम समय रहते उठें, जागे और स्वयं को सम्भाले तथा अपने महान ऋषि–मुनियों के प्रशस्त मार्ग का अनुसारण करें, जिन्होंने अपनी जीवन यात्रा को बड़ी समझदारी से, सावधानी से, ज्ञानपूर्वक, जागरूकता और उदेश्यपूर्ण ढंग से जीया है और सम्पूर्ण विश्व के प्रकाश स्तंभ बने गये हैं। बुद्धिमान लोग उन की जीवन यात्रा से प्रेरित और लाभान्वित हो रहे हैं। जीवन प्रवाह को धीरे–धीरे भौतिक जगत से अध्यात्म की ओर मोड़ जीवन यात्रा के लिए सुखद सामान जुटाने का प्रयास कर रहे हैं। हम अपने जीवन काल में कुछ ऐसे सत्कर्म जरूर कर लें कि मृत्यु के बाद हमारी आत्मा की शान्ति के लिए दूसरों को शांति सभाएं व प्रार्थनाएं ना करनी पड़े। दूसरों के द्वारा की गई प्रार्थनाएं हमारे बिल्कुल भी काम आने वाली नहीं हैं। अपना किया हुआ काम व दान ही काम आता है। मन की भूमि पर ऐसे बीज न बोयें कि कल उन की फसल काटते समय आंसू बहाने पड़े।

जीवन का प्रारम्भ जन्म से होता है तो अन्त मृत्यु से होता है। जन्म और मृत्यु यह दोनों जीवन के दो छोर हैं एक प्रारम्भ तो दूसरा अंत। मृत्यु से पूर्व अपने जीवित काल में ही शुभ–अशुभ, पुण्य–पाप कर्म करने में हम स्वतंत्र हैं परन्तु मृत्यु के उपरान्त ईश्वर की न्याय व्यवस्था में बंध जाते हैं और किये हुए कर्मों का फल कर्ता को ही भोगना होता है। ऋषि दयानंद जी सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं कि अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतंत्र, परन्तु जब वह कर्म कर चुकता हैं, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन हो कर फल भोगता है। मृत्यु के प्रति और कोई कर्तव्य शेष नहीं बचता है। आजकल मृतक पर चादरें और फूल चढ़ाने की परम्परा चल पड़ी है और जो अवैदिक और एक अंध परम्पर है। जड़ शरीर पर चढ़ाने के लिए चेतन फूलों का जीवन लेना कहां की बुद्धिमता है? ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कार विधि में अन्त्येष्टि संस्कार की विधि का जो वर्णन किया है सभी आर्य जनों को उस का पालन करना चहिए और साथ ही अपने परिचितों को भी प्रेरित करना चाहिए। चादरों और फूलों के बदले अधिक से अधिक सुगन्धित सामग्री और घृत आहुतियां दें, जिससे पर्यावरण दूषित नहीं होगा और सामग्री तथा घृत भेंट करने वाले पुण्य की भागीदार भी बन जायेगें। परिवार में कुछ दिन चाहें तो यज्ञ का आयोजन करवा सकते हैं और करवाना भी चाहिए यह एक अच्छी परम्परा है, और वैदिक विद्वान द्वारा प्रवचन करवाना और धर्मोपदेश की प्रवृत्ति के लिए भी संस्थानों को जितना धन चाहें दान करें। इस प्रकार अच्छी परम्पराओं का पालन करना चाहिए।

जीवन का सार यह है कि ईश्वर ने अति चंचल, नश्वर संसार में हम जीवों की स्थिति की है, उस में भी पत्ते के तुल्य शीघ्र गिर जाने वाले शरीर में हमारा निवास कराया है। ऐसे नश्वर संसार और क्षण भंगुर शरीर में रहते हुए भी संसार और शरीर को नित्य अविनाशी जान कर हम जीव जगतपति प्रभु को भुला देते हैं। संसार में ऐसे फंस जाते हैं कि ईश्वर की वेद वाणी में रूचि नहीं रखते और न ही वेदवेत्ता महात्माओं के संग ही श्रद्धा रखते हैं, ईश्वर वेद मंत्रों के माध्यम से उपदेश करते हैं कि सत्संग करें। वेदवाणी पढ़े–सुने और व्यवहार में लायें। प्रेम से ईश्वर की भक्ति करके अपना लोक–परलोक सुधारें।

भरोसा कर तू ईश्वर पर, तुझे धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जाएगा, तुझे रोना नहीं होगा।।

786/8 करनाल 132001 हरियाणा
मो. 09416801757

आर्य युवक सभा अमृतसर द्वारा वेद प्रचार

युग प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मन्तव्यों को कार्यरूप देते हुए आर्य युवक सभा अमृतसर ने पिछले वर्ष अपने सीमित साधनों से विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में छात्र/छात्राओं को ईश्वर स्तुति–प्रार्थना–उपासना मन्त्र, वैदिक संध्या, अथ स्वस्तिवाचनम् अथ शान्तिकरणम्, ऋषि दयानन्द गुणगान कण्ठस्थ कराकर नकद पुरस्कार दिया।

आर्य गर्ल्स स्कूल की 50 छात्राओं को सभा प्रधान श्री मुरारीलाल आर्य ने दैनिक यज्ञ कराना सिखाया। इसके साथ ही डी.ए.वी. स्कूलों के छात्र/ दात्राओं को वैदिक विचार धारा से ओत प्रेत कराने में वर्ष भर अपनी भूमिका निभाई।

वेद एवं वैदिक संस्कृति सम्मेलन

आर्ष ज्योति गुरूकुल आश्रम कोसरंगी के आचार्य द्वारा प्राप्त पत्र के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्सय जिले के आर्ष ज्योति गुरूकुल आश्रम कोसरंगी परिसर में प्रान्तीय स्तर का एक बृहद "वेद एवं वैदिक संस्कति सम्मेलन" का आयोजन 5,6,7 दिसम्बर 2014 को आयोजित किया जा रहा है जिसमें भारतवर्ष के लगीाग 100 वैदिक विद्वानों का आगमन होगा। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के उच्चकोटि के साधु–संन्यासी, विद्वान, आचार्य सहित समाज सेवी महानुभाव व महामहिम राज्यपाल, माननीय मुख्यमन्त्री एवं मन्त्रीगणों के पधारने की संभावना है। आर्यजनों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में कार्यक्रम में पधारकर पुण्य के भागी बनें।

अजमेर में होगा ऋषि बलिदान समारोह का आयोजन

परोपकारिणी सभा, अजमेर के प्रधान श्री गजानन्द आर्य से प्राप्त पत्र के अनुसार पारोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वाधान में 131वें ऋषि बलिदान दिवस समारोह का भव्य आयोजन 31 अक्टूबर से 02 नवम्बर 2014 तक समारोह पूर्वक किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत ऋग्वेद पारायण यज्ञ, वेद गोष्ठी, चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण वेद प्रतियोगिता एवं सम्मान समारोह का भी आयोजन होगा। इस अवसर पर प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु, आचार्य विजयपाल, स्वाती ऋतस्पति, डॉ. ब्रह्ममुनि, डॉ. सुरेन्द्र कुमार, डॉ. वेद पाल, आचार्या सूर्या, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार, डॉ. राम प्रकाश, आचार्य विरजानन्द देवकरणि, सत्येन्द्र सिंह, डॉ. कृष्णपाल सिंह, श्री सत्यानन्द आर्य, श्री राजवीर, श्री जगदीश शर्मा, श्री शिवकुमार चौधरी, श्री जयदेव आर्य, श्री प्रकाश आर्य, श्री सत्यपाल पथिक एवं पं. भूपेन्द्र सिंह आदि वैदिक विद्वानों के प्रवचन एवं भजन होंगे।

thearyasamaj.org

☞ पृष्ठ 07 का शेष

आस्तिकवाद

सर्वज्ञानमय चिदानन्द परमात्मा ही जगत् के निर्माण में सक्षम है। उसके विना कोई जीव (मुक्तादि भी) जगत् का निर्माण नहीं कर सकता–अल्पसामर्थ्यवान् होने से। जड़ जगत् में स्वयं बनने का सामर्थ्य नहीं है अतः परमात्मा ही जगत् को बनाता है तथा सदा आनन्द में रहता है। परमात्मा जगत् का निर्माण उपादानभूत प्रकृति के परमाणुओं से करता है। सृष्टि निर्माण में परमात्मा निमित्त कारण है। उसी प्रकार घटादि के निर्माण में कुम्भकार मिट्टी आदि उपादान भूत सामग्री से ही रचना करने में समर्थ होता है घटादि के निर्माण में जीव निमित्त कारण है। अतः माता–पिता रूप निमित्त कारण से उत्पत्ति के प्रबन्ध का नियम परमात्मा ने ही बनाया है।

नास्तिक– ईश्वर मुक्तिरूप सुख को छोड़कर जगत् के सर्जन, धारण, पालन और संहाररूपी बखेड़े में क्यों पड़ता है?

आस्तिक– ईश्वर सदैव मुक्त स्वभाव होने से मुक्तिरूप सुख को नहीं छोड़ता। मुक्ति को छोड़कर बन्ध में पड़ना जीवों का काम है परमेश्वर का नहीं। मुक्ति को छोड़कर बन्धन को प्राप्त होना तथा बन्ध को छोड़कर मुक्ति को प्राप्त करना जीव का कार्य है। मुक्ति और बन्ध सापेक्षता से होते हैं। अर्थात् मुक्ति की अपेक्षा से बन्ध, और बन्धकी अपेक्षा से मुक्ति होती है। अतः जो कभी बुद्ध नहीं था उसे मुक्त क्योंकर कहा जा सकता है? अनन्त सर्वदेशी सर्वव्यापक ईश्वर बन्धन या नैमित्तिक (निमित्त से प्राप्त होने वाली) मुक्ति के चक्र में तीर्थंकरों के समान कभी नहीं पड़ता। वह परमात्मा सदैव मुक्त कहाता है। वह परमात्मा आपके (जैनी) द्वारा माने जानेवाले तीर्थकरों के समान नहीं है, जो 'एक देश में रहने वाला, बन्धपूर्वक मुक्ति से युक्त तथा साधनों से सिद्ध मुक्ति को प्राप्त करके तथाकथित परमात्मा' कहा जाता है। अनन्तगुण–कर्म–स्वभाव युक्त परमात्मा से निर्मित यह जगत् उसके समक्ष किञ्चन्मात्र है अर्थात्–यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा के एक देश में ही वर्तमान है, जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है– **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि'** (31।2)। वह अनन्त अखण्ड ब्रह्म इस जगत् को बनाता, धारण करता तथा प्रलय करता हुआ भी कभी बन्ध में नहीं पड़ता।

नास्तिक– जैसे भाँग पीने से मनुष्य को स्वयमेव नशा चढ़ जाता है वैसे ही जीव को अपने कर्मों का फल स्वयमेव मिल जाएगा, फल प्रदाता के रूप में ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है।

आस्तिक– यह पूर्व में कहा जा चुका है कि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों का फल भोगना नहीं चाहता इसलिए अवश्यमेव परमात्मा को न्यायाधीश के रूप में होना चाहिए। जिस प्रकार चोर, डाकू, लम्पट आदि दुष्ट मनुष्य स्वयं कारागार में नहीं जाते या स्वयं फाँसी पर नहीं चढ़ते उनको कारागार, फाँसी आदि का दण्ड राजा प्रदान करता है, इसी प्रकार जीवों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य के सम्बन्ध में परमात्मा को समझना चाहिए।

जहाँ तक भाँग पीकर स्वयमेव नशा चढ़ने का प्रश्न है, यह उदाहरण सटीक नहीं है क्योंकि मद्यपान के अभ्यासी को न्यूनमात्रा में नशा चढ़ता है तथा अनभ्यासी को बहुत अधिक मद चढ़ता है क्या इसी प्रकार बहुत अधिक पाप–पुण्य करनेवाले को न्यून फल मिलना सम्भव हो सकता है? तब तो छोटे अर्थात् न्यून कर्मवालों को अधिक फल मिलने लगेगा? अतः यह उदाहरण व्यभिचरित है।

नास्तिक– हमारे (जैनियों के) मत में तो अनेक ईश्वर हैं एक ईश्वर नहीं है। जितने भी मुक्त जीव हैं, वे सभी ईश्वर हैं।

आस्तिक– आपका यह कथन ठीक नहीं है कि बहुत ईश्वर हैं, जबकि अनेक जीवों के होने से उनमें लड़ाई–झगड़े होते हैं वैसे उन ईश्वरों में भी लड़ना–भिड़ना होता होगा। चौबीस तीर्थंकरों को मुक्त मानकर उन्हें ईश्वर समझना भ्रम है, क्योंकि वे पहले बुद्ध थे, पश्चात् मुक्त हुए, पुनः बन्ध में अवश्य पड़ेंगे, क्योंकि स्वाभाविक रूप से सदैव मुक्त नहीं हैं। क्योंकि अल्पज्ञ जीव को मुक्ति दशा में सर्वज्ञ सर्वसामर्थवान् ईश्वर मानना मिथ्या है, यतः अल्प शक्ति, और अल्पज्ञ जीव मुक्ति दशा में सर्वज्ञ तथा असीम सामर्थ्यवाला नहीं हो सकता। उसका सामर्थ्य सर्वदा ससीम ही रहेगा।

नास्तिक– यह जगत् स्वयंसिद्ध है, इसका कोई कर्त्ता नहीं। कर्त्ता के रूप में ईश्वर को मानना मूढता है।

आस्तिक– इस संसार में विना कर्त्ता का कोई कर्म, कर्म के बिना कोई कार्य होता हुआ नहीं दीखता है; अतः ईश्वर के विना यह विविध जगत् और इस संसार में नाना प्रकार नाना प्रकार का रचना – वैशिष्ट्य या कौशल सम्भव नहीं है। ईश्वर कर्त्ता है, जगत् कार्य तथा रचनाविशेष व कौशल ही ईश्वर का कर्म है। गेहूँ से आटा या रोटी का निर्माण या उदरपूर्ति का होना जब स्वयंसिद्ध नहीं है तब इस समग्र सृष्टि का निर्माण स्वयंसिद्ध कैसे हो सकता है?

जगत् में जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगज उत्पत्ति विनाशवाले देखे जाते हैं। फिर यह जगत् भी उत्पन्न और विनाशवाला क्यों नहीं? यह स्वयंसिद्ध कैसे हो सकता है? जो संयोग से उत्पन्न होता है, वह अनादि और अनन्त कभी नहीं हो सकता। अतः इस सृष्टि का भी निर्माण हुआ है और इसका प्रलय भी होगा। इस वर्तमान अवस्था में जगत् सर्वदा नहीं रहेगा और न था।

नास्तिक– ईश्वर विरक्त या मोहित है? यदि विरक्त है तो जगत् के प्रपञ्च में क्यों पड़ा? यदि मोहित है तो जगत् के बनाने में समर्थ नहीं हो सकता।

आस्तिक– वैराग्य या मोह सर्वव्यापक परमात्मा में उत्पन्न (घटित) नहीं हो सकता। सर्वव्यापक पदार्थ किसको छोड़ या किसको ग्रहण कर सकता है? ईश्वर से उत्कृष्ट कोई पदार्थ नहीं है और न उससे कोई अप्राप्य ही है अतः उसका किसी में मोह भी नहीं होता। वैराग्य या मोह का होना जीव में घटित होता है, ईश्वर में नहीं।

नास्तिक– ईश्वर को जगत् का कर्त्ता तथा जीवों के कर्मों का फलदाता मानने पर ईश्वर जगत् में लिप्त हो जाएगा। जगत् में लिप्त ईश्वर को प्रपञ्ची तथा दुःखी भी मानना होगा।

आस्तिक– जब संसार में धार्मिक न्यायाधीश विद्वान् व्यक्ति फल पानेवाले, दण्डप्राप्तकर्त्ता व्यक्तियों तथा उसके कर्मों में लिप्त नहीं होता, तब अनन्त, शुद्ध, सदामुक्त, सर्वशुचि परमब्रह्म इस जगत् में भला क्योंकर लिप्त हो सकेगा? ईश्वर न्यायाधीश के समान निर्लिप्त रहता है। अतः वह कभी भी प्रपञ्ची होकर दुःखी नहीं हो सकता।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः
न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
न दुष्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।

अर्थ– जिस प्रकार सभी लोकों का चक्षुस्वरूप (प्रकाशक) सूर्य चाक्षुष तथा बाह्यादि पदार्थ के दोषों से दूषित नहीं होता, उसी प्रकार सर्वभूतों में व्यापक सबको वश में करनेवाला एकमेव परमात्मा बाह्य लौकिक दुःख और दोषों से दूषित नहीं होता है।

विशेष– नास्तिकों के अनेक मत–मतान्तर हैं। यह लेख नास्तिक जैनियों के मत के खण्डन में लिखा गया है। सत्यार्थप्रकाश के द्वादश समुल्लास में 'नास्तिक–आस्तिक संवाद' जैनियों के मत पर आधारित हैं अर्थात् नास्तिकों के कथन जैनियों के मत हैं, यह समझना चाहिए। इसमें चार्वाक मत के भी कुछ तर्कों का समावेश हो जाता है।

अध्यक्ष संस्कृत विभाग
रणवीर धनञ्जय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, अमेठी।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल फिल्लौर बना गतिविधियों का केन्द्र

डी.ए.वी. प्रबन्धकृर्त्री समिति के प्रधान मान्यवर श्री पूनम सूरी जी द्वारा सभी डी.ए.वी स्कूलों को विद्यार्थियों में वैदिक एवं जीवन मूल्यों को समाहित करने हेतु विभिन्न गतिविधियों के आयोजन संबंधी दिशानिर्देश दिए गए। उन्हीं का पालन करते हुए डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल फिल्लौर में गतिविधियों का आरंभ किया गया। इसके अन्तर्गत योग्य वैदिक पंडित जी द्वारा विद्यार्थियों को वेद मंत्रों का सही उच्चारण एवं दैनिक हवन विधि सिखाने हेतु विशेष प्रबंध किया गया। वैदिक मूल्यों पर आधारित पुस्तकों का वितरण किया गया जिससे विद्यार्थी जीवन को वैदिक एवं भारतीय मूल्यों पर चलाते हुए प्रगति की राह पर आगे बढ़ सके। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों ने पर्यावरण प्रदूषण के कारण एवं संरक्षण विषय चार्ट तैयार किए तथा विद्यालय में उनकी प्रदर्शनी लगाई। पर्यावरण संरक्षण के लिए अपनी जिम्मेदारी के प्रति संकल्प लिया। प्रधानाचार्य श्री यागेश गंभीर ने इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाने हेतु अन्य गतिविधियाँ भी समय–समय पर आयोजित करवाने हेतु अपना संकल्प दोहराया।

thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 15-16/10/2014
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

डॉ. धर्मदेव विद्यार्थी जी को हरियाणा संस्कृत साहित्य पुरुस्कार प्रदान किया गया

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पानीपत जोन के क्षेत्रिय निदेशक डॉ. धर्मदेव विद्यार्थी जी को हरियाणा संस्कृत साहित्य अकादमी का वर्ष 2013 का साहित्य पुरुस्कार प्रदान किया गया है। डॉ. विद्यार्थी को यह सम्मान उनके द्वारा संस्कृत भाषा में लिखी गई पुस्तक योगासन सुधा' के लए दिया गया। यह पुरुस्कार उन्हें मुख्यमंत्री श्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा जी की अध्यक्षता में मुख्य मंत्री निवास पर आयोजित कार्यक्रम में शिक्षा मंत्री श्रीमती गीता भुक्कल द्वारा प्रदान किया गया। उन्हें पुरुस्कार स्वरूप एक ताम्रपत्र, शाल तथा 21000 रु प्रदान किए गए व राज्य द्वारा सम्मानित साहित्यकार के रूप में मान्यता देते हुए आजीवन हरियाणा राज्य परिवहन की बसों में निशुल्क यात्रा करने का अधिकार दिया गया। ज्ञातव्य है कि इसी वर्ष डॉ. विद्यार्थी द्वारा लिखित पुस्तक ''क्रान्तिवीर'' को हरियाणा ग्रन्थ अकादमी की ओर से सम्मानित करते हुए हरियाणा सरकार की ओर से प्रकाशित भी किया गया तथा 11000 की राशि सम्मान स्वरूप प्रदान की गई है। इस प्रकार डॉ. विद्यार्थी जी को एक वर्ष में दो साहित्य पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। डॉ. विद्यार्थी की अब तक 20 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें से 8 पुस्तकों पर हरियाणा सरकार ने पुरस्कार प्रदान किया है। उन्हें डी.ए.वी. संस्था द्वारा संचालित शहीद राजपाल साहित्य पुरस्कार भी मिल चुका है। सामाजिक क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए फिलिप्स गोड्फे जैसे सम्मानित पुरस्कार सहित तीन दर्जन से अधिक सरकारी व गैर सरकारी पुरस्कारों से अलंकृत डॉ. विद्यार्थी आर्य समाज व डी.ए.वी. संस्था को समर्पित व्यक्तित्व हैं।

आर्य समाज ने किया यज्ञेश का सम्मान

कोटा में आर्य समाज गायत्री विहार के तत्वावधान में आयोजित संक्षिप्त कार्यक्रम में डी.ए.वी. स्कूल की प्राचार्या श्रीमती सरिता रंजन गौतम ने होनहार विद्यार्थी यज्ञेश को शॉल ओढ़ाकर व आर्य समाज के जिला प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा ने स्मृति चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया।

इस अवसर पर आर्य समाज गायत्री विहार के प्रधान अरविन्द पाण्डेय, आर्य समाज विज्ञाननगर के प्रधान जे.एस.दुबे, वेद प्रचार समिति के संस्थापक प्रधान रामप्रसाद याज्ञिक, अन्य अतिथि व आर्यजन उपस्थित थे।

अरविन्द पाण्डे ने बताया कि यज्ञेश आर्य को वर्ष 2014 की विभिन्न मेडिकल प्रवेश परीक्षाओं में चयन होने पर उन्हें सम्मानित किया गया। यज्ञेश आर्य का प्रथम प्रयास में ही ए.आई.पी.टी, सी.पी.एम.टी. तथा आर.पी.एम.टी. तीनों में ही चयन हुआ है।

प्रधानाचार्या ने बालक आर्य के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए कहा कि घर में ही शिक्षा का वातावरण होने के साथ संस्कारों का भी बालक पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी कारण उसे यह सफलता मिली है।

डी.ए.वी. आर.के. पुरम् में जीवित है गुरु शिष्य परम्परा

भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा आज भी विद्यमान है – शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है–**मातृमान् पितृमानाचार्यवान पुरुषो वेद।।** अर्थात् जब तीन उत्तम शिक्षक प्रथम माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य हो तभी मनुष्य ज्ञानवान बनता है। डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल आर.के. पुरम सेक्टर–5 में शिक्षक दिवस मनाया गया जिसके मुख्य अतिथि श्री एच.एल. भाटिया जी (मैनेजर) श्री कोहली जी (प्रधान) आर्य–समाज मंदिर सेक्टर–5, श्रीमती नैय्यर (पूर्व मुख्याध्यापिका) वसंत कुंज श्रीमती–गिरिजा (पूर्व कार्यकारी प्रधानाचार्या) वसंत कुंज, श्रीमती सुनीता मल्होत्रा पूर्व अध्यापिका एवं समाज सेविका श्रीमती पूनम सिंह की उपस्थिति में सामूहिक हवन का आयोजन श्रीमती अनिता चोपड़ा प्रधानाचार्या जी के प्रेरणा से किया गया। हवन में प्री. पाइमरी से पाँचवी कक्षा तक के छात्रों सहित सभी शिक्षकों ने भी भाग लिया। गुरु महिमा के भजन गाए गये तथा श्री कोहली जी ने बच्चों को अपना उद्‌बोधन में गुरुकुल की शिक्षा के बारे में बताया तथा अपने गुरुओं का आदर तथा श्रद्धा का भाव रखने की प्रेरणा दी। श्रीमती पूनम सिंह जी ने छात्रों के साथ मिलकर ईश्वर से अपने गुरुजनों के लिए मंगल कामना करते हुए कार्य कार्यक्रम का समापन किया। तत्पश्चात् प्रसाद वितरण किया गया।

मुद्रक व प्रकाशक – **एस.के.शर्मा**, सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**